हेवज्रतन्त्रम्
(संस्कृत मूल एवं हिन्दी अनुवाद)
Hevajra Tantram

काशीनाथ न्यौपाने
Kashinath Nyaupane

INDIAN MIND

हेवज्रतन्त्रम्
(संस्कृत मूल एवं हिन्दी अनुवाद)

काशीनाथ न्यौपाने

INDIAN
MIND

First Edition 2012

© Kashinath Nyaupane

Published by **Indian Mind**, Varanasi.

Sole Distributor
Indica Books
Varanasi 221 001 (U.P.)
India
e-mail : indicabooks@satyam.net.in
website : www.indicabooks.com

ISBN : 81-86117-11-3

Designed by : Abhijit Pandit

Printed in India by
Dee Gee Printers
Varanasi. Cell :91+9935408247

विषय-सूचि

अध्याय	पृष्ठ संख्या
पूर्वपीठिका	7
प्रथम कल्प	
१. प्रथमः वज्रकुल पटलः	13
२. द्वितीयः मन्त्रपटलः	25
३. देवतापटलस्तृतीयः	35
४. देवताभिषेकपटलः चतुर्थः	41
५. पञ्चमः तत्त्वपटलः	43
६. चर्यापटलः षष्ठः	49
७. छोमापटलः सप्तमः	55
८. योगिनीचक्रनामक महायोगिनी मेलापकपटलःअष्टमः	61
९.. विशुद्धिपटलो नवमः	71
१०. अभिषेकपटल दशम	75
११. वज्रगर्भाभिसम्बोधिदृष्टिपटल एकादशः	83
द्वितीय कल्प	
१२. होमनिर्णयप्रतिष्ठापटलः प्रथमः	87
१३. सिद्धिनिर्णयो द्वितीयपटलः	91
१४. हेवज्रसर्वतन्त्रनिदान-सन्ध्याभाषा तृतीय पटलः	103
१५. हेवज्रसर्वतन्त्रमुद्रणपिण्डार्थो नाम चतुर्थः पटलः	117
१६. हेवज्राभ्युदयः पञ्चमः पटलः	135
१७. हेवज्रपटलाभिधानपटलः षष्ठः	147
१८. भोजनपटलः सप्तमः	149
१९. विनेयपटलो नामाष्टमः	153
२०. मन्त्रोद्धारपटलो नवमः	155
२१. द्वितीयकल्पराजे जापपटलो नाम दशमः	163
२२. सहजार्थपटलो नामैकादशः	165
२३. महातन्त्रराजमायाकल्पो द्वितीयः	169
सन्दर्भग्रन्थ सूची	171

पूर्वपीठिका

हेवज्रतन्त्र की देशना भगवान् तथागत ने निर्माणकाय द्वारा ८० वर्षों तक जम्बूद्वीप में निवास करते हुए बोधिसत्त्व वज्रगर्भ को की थी । इस हेवज्र का उपदेश किसी परम्परा द्वारा आया हुआ नहीं है, अपितु स्वयं बुद्ध द्वारा सीधे वज्रगर्भ को किया गया है। आचार्य बुस्तोन ने हेवज्र की बृहद् टीका व्याख्या तन्त्र में वज्रमाला के वचन को उद्धृत करते हुए कहा है कि चक्रसंवरतन्त्र की देशना के पश्चात् निर्माणकाय द्वारा मगध में चार मारों का दमन करते हुए जम्बूद्वीप में हेवज्रतन्त्र की देशना की गई, किन्तु किस स्थान विशेष में देशना की इसका स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध नहीं है।

हेवज्र में हे शब्द का अर्थ महाकरुणा है और वज्र का अर्थ प्रज्ञा है। महाकरुणा उपाय है। इस तरह यह तन्त्र प्रज्ञोपायात्मक है। प्रकृष्ट ज्ञान को प्रज्ञा कहते हैं। अद्वयज्ञान इसका अर्थ है। तन्त्र में प्रज्ञा का अर्थ शून्यता होता है। इस तरह यह हेवज्रतन्त्र शून्यता-करुणात्मक या प्रज्ञोपायात्मक है। हेवज्रमण्डल में हेरुक प्रधान देवता के रूप में उल्लिखित हैं। जब हेरुक अपनी प्रज्ञा के साथ होते हैं तो हेवज्र कहलाते हैं।

बौद्धतन्त्र में गुह्यसमाज तन्त्र के पश्चात् हेवज्रतन्त्र सर्वाधिक प्रसिद्ध है। हेवज्रतन्त्र योगिनीतन्त्र के रूप में अपना परिचय स्वयं देता है। इन दोनों का बौद्ध तन्त्र साहित्य पर गहरा प्रभाव है। दोनों के अनेक वचन अन्यत्र आनुपूर्वी से भी मिल जाते हैं। विस्तृत हेवज्रतन्त्र वाङ्मय के आभ्यन्तर सात भेद हैं - (क) मूलतन्त्र, (ख) संग्रहतन्त्र, (ग) उत्तरतन्त्र, (घ) उत्तरोत्तरतन्त्र, (ङ) आख्यातन्त्र, (च) फलतन्त्र।

हेवज्रतन्त्र दो कल्पों में विभक्त है - (क) वज्रगर्भाभिसम्बोधिकल्प और (ख) मायाकल्प। इसीलिए इसे द्विकल्प भी कहा जाता है। प्रायः सभी टीकाकारों ने इस तन्त्र को द्विकल्प नाम से उल्लेख किया है।

हाल संस्कृत में प्राप्त हेवज्रतन्त्र दो कल्पात्मक है। इस के प्रथम वज्रगर्भाभिसंबोधिकल्प में ग्यारह तथा द्वितीय मायाकल्प में बारह, कुल २३ पटलों में उपलब्ध यह हेवज्रतन्त्र मूलतन्त्र का अंग है। जिसका विवरण निम्न है -

प्रथम कल्प	**द्वितीय कल्प**
१- वज्रकुलपटल	१- होमनिर्णयप्रतिष्ठापटल
२- मन्त्रपटल	२- सिद्धिनिर्णयपटल
३- देवतापटल	३- संध्याभाषापटल
४- देवताभिषेकपटल	४- मुद्रणपिण्डार्थपटल
५- तत्त्वपटल	५- हेवज्राभ्युदयपटल
६- चर्यापटल	६- हेवज्रपटलाभिधानपटल
७- छोमापटल	७- भोजनपटल
८- मेलापकपटल	८- विनेयपटल
९- विशुद्धिपटल	९- मन्त्रोद्धारपटल
१०- अभिषेकपटल	१०- जापपटल
११- अभिसम्बोधिपटल	११- सहजार्थपटल
	१२- मायापटल

हेवज्रतन्त्र में हेवज्र के स्वरूप, साधक, मुद्रा, महामुद्रा, साधनास्थल आदि का विस्तार से विवेचन है। हेवज्रतन्त्र में हेवज्र इसके उपास्य हैं। वे कपालों की माला धारण करते हैं, वीर हैं तथा सदैव नैरात्म्य से आश्लिष्ट रहते हैं। उनका वर्ण नीला है तथा वे अरुणाभा से युक्त हैं। उनके नेत्र बन्धुक पुष्प जैसे लाल हैं। पिंगल वर्ण एवं ऊर्ध्वोत्थित केश हैं। वे पाँच मुद्राओं से अलंकृत हैं। वे चक्र, कुण्डल, कण्ठी धारण किये हुए हैं। वे हाथ में सोने का आभूषण धारण किये हुए हैं। मेखला पहने हुए हैं। उनकी दृष्टि क्रोध से भरी हुई है। वे सोलह वर्ष के हैं और व्याघ्र चर्म पहने हुए हैं। उनके हाथों में वज्रकपाल, खट्वाङ्ग और कृष्णवज्र हैं। अष्ट योगिनियों से परिवृत्त होकर वे श्मशान में क्रीडा करते हैं। वे चतुर्भुज हैं। इनकी प्रथम वाम भुजा में देवताओं और

असुरों के रक्त से पूर्ण नरकपाल है। प्रथम दक्षिण भुजा में वज्र है। शेष दोनों भुजाओं में प्रज्ञा भगवद्रूपिणी वज्रवाराही अलिङ्गित रूप में है।

हेवज्रतन्त्र में मुद्रा का भी वर्णन मिलता है, जिसे प्रज्ञास्वभावा कहा गया है। हेवज्र में वर्णित मुद्रा सुन्दर मुखवाली, विशालाक्षी, रूपयौवन मण्डित, नीलकमल के समान वर्णवाली, कृपावती है। वह वज्रकन्या कही गई है और इसे ही ग्रहण करने के लिए वीर को उपदेश किया गया है। मुद्रा तो सुखवहा होती है। उससे संयुक्त होकर साधक को गुरु के पास जाना चाहिए।

महामुद्रा का भी पर्याप्त विस्तार से वर्णन और स्वरूप निरूपण मिलता है। वह आदिस्वरस्वभावा एवं उत्पन्नक्रमयोग के अनुसार भगवती प्रज्ञा है। न वह दीर्घ है न ह्रस्व, न चतुरस्त्र है न वर्तुल। वह स्वादगन्धरसातीता है एवं सहजानन्द प्रदान करती है। वह न कृष्णा है न गौरी। वह पद्मपत्र के समान आकारवाली है। वह सुगन्धमयी है। उनका प्रस्वेद भी मृगनाभि के समान सुगन्धिपूर्ण है। वह धीरा, अचंचला, प्रियवादिनी, मनोरमा, सुकेशी, त्रिवलीमध्या है। अत: भगवान् का जैसा रूप है वैसा ही प्रज्ञा का भी है।

उसी प्रकार वीर साधक का भी वर्णन है, जिसमें वह अस्थिमालिका आदि धारण करता है। इस साधक अथवा भावक को कानों में दिव्य कुण्डल, मस्तक में चक्र, हाथों में दो रुचक, कटि में मेखला, पैरों में नूपुर, बाहुमूल में केयूर, ग्रीवा में हड्डियों की माला धारण करनी चाहिए। उसका परिधान व्याघ्र चर्म है। उसे पञ्चामृत का भक्षण करना चाहिए। इस प्रकार के हेरुकयोग के साधक को पञ्चवर्णों में विहार करना चाहिए। पाँचों वर्णों को उसे एक वर्ण मानना चाहिए।

यह साधक जिन स्थलों पर साधना करता है, उनके पर्याप्त उल्लेख हेवज्रतन्त्र में देखने को मिलते हैं। वृक्ष के नीचे, श्मशान में, देवी के मन्दिर में अथवा विजन प्रान्त में से किसी भी स्थान में मुद्रा के साथ उक्त चर्या करने का विधान है।

मन्त्रयान महायान का ही विशिष्ट अंग है। महाबोधि प्राप्ति इसका परम या चरम लक्ष्य है। तन्त्र में प्रवेश के लिए योगाचार और माध्यमिक इन दोनों

दर्शनों में से किसी एक दर्शन की अनिवार्यता है। प्रस्तुत हेवज्र की पञ्जिका मुक्तावली के रचयिता रत्नाकरशान्ति ने हेवज्रतन्त्र का व्याख्यान योगाचार दर्शन की दृष्टि से किया है। आचार्य का कहना है कि महायान में सभी धर्म विज्ञप्ति मात्र होते हैं। प्रकाश ही विज्ञप्ति अर्थात् चित्त का स्वरूप है। नील, पीतादि प्रकाशमान् हैं, अतः वे विज्ञान से बाहर नहीं हैं। अर्थात् वे बाह्यार्थ नहीं हैं, अपितु विज्ञानस्वरूप ही हैं। जैसे लंकावतार में कहा है –

बाह्यो न विद्यते ह्यर्थो यथा बालैर्विकल्प्यते।
वासनालुठितं चित्तमर्थाभासं प्रवर्तते ॥ (लङ्कावतारसूत्र १०.१५४)

उक्त नील पीतादि बाह्यार्थ नहीं हैं, क्योंकि न तो उनका एक स्वभाव है और न अनेक स्वभाव हैं। उनका एक स्वभाव इसीलिए नहीं है, क्योंकि उनके अनेक भाग प्रतिभासित होते हैं। न तो परमाणु के रूप में वे अनेक स्वभाव ही है क्योंकि परमाणु सिद्ध ही नहीं है। परमाणु सावयव या निरवयव है? यदि वह सावयव है तो वह परमाणु कैसे है? यदि वह निरवयव है तो परमाणुओं का सर्वात्मना संयोग होने पर वे उनके अभिन्न देश में स्थित हो जाने के कारण पृथ्वी, सागर, पर्वत आदि समस्त पिण्ड अणुमात्र हो जायेंगे। अतः विज्ञान से बहिर्भूत अर्थ नहीं है। जब बाह्यार्थ नहीं है, तब उसकी अपेक्षा से होनेवाला कोई ग्राहक विज्ञान भी नहीं है। अतः ग्राह्य-ग्राहक दोनों नहीं हैं। फलतः द्वय का प्रतिभास केवल भ्रान्ति है। वही भ्रान्ति अभूतपरिकल्प कहलाती है। उस अभूतपरिकल्प भ्रान्तज्ञान की द्वय से रहितता शून्यता ही विज्ञप्तिमात्रता है। वह द्वय परिकल्पित स्वभाव है, क्योंकि जैसे दिखलाई पड़ते हैं, वैसे उनकी सत्ता नहीं है। अभूतपरिकल्प परतन्त्रस्वभाव है, क्योंकि हेतु-प्रत्ययों के द्वारा वह वैसा उत्पन्न किया जाता है। द्वय से रहितता परिनिष्पन्न स्वभाव है, क्योंकि वह सदैव वैसे ही पूर्ववत् अविकारी रहता है।

अतः साधक को तीन समाधियों की भावना करनी चाहिए, शून्य समाधि, अप्रणिहित समाधि तथा अनिमित्त समाधि। सभी भाव स्कन्ध, आयतन, धातु आदि परिकल्पित लक्षणों से शून्य हैं। इस नास्तिता का आलम्बन करने से यह शून्य समाधि है। सभी त्रैधातुक धर्म दुःख हैं, या दुःखहेतु हैं, क्योंकि वे

अभूतपरिकल्पित हैं और परतन्त्र स्वभाव हैं। वे अभूतपरिकल्पित इसीलिए हैं, क्योंकि उनका द्वय के रूप में प्रतिभास होता है। इस प्रकार यह अप्रणिहित समाधि है, क्योंकि यह पुनर्भव की इच्छा की विरोधी है। द्वयरहितता सभी पदार्थों की प्रकृति है, क्योंकि यह स्वभाव आगन्तुक नहीं है। हमेशा उसी अविकृत रूप में रहने के कारण यही तथता है। सभी तत्त्वों में श्रेष्ठ होने के कारण यही भूतकोटि है। भ्रान्तिनिमित्त आकारों का परिवर्जन हो जाने पर इसका आभास होता है, अत: यह अनिमित्त है। यही लोकोत्तर ज्ञान का विषय होने से परमार्थ है। आर्य बल और वैशारद्य का हेतु होने से यह धर्मधातु है। इसी का आलम्बन करने से आर्यधर्मों की उत्पत्ति होती है। यह द्वयशून्यता भावाभावरहितता है और यही अनिमित्त समाधि है। यही मुख्य प्रज्ञापारमिता है। द्वैताकारों के अस्त हो जाने से अनन्त प्रकाश की ख्याति होती है। यह शून्यता धर्मता है, जो धर्म से अन्य नहीं है, अपितु उस स्वसंवेद्य भाव तत्त्व की जो द्वय से रहितता है वही विज्ञप्तिमात्रता है और वही शून्यता है। स्वसंवेद्य ही परमतत्त्व है।

प्रथम कल्प के प्रथम पटल का नाम हेवज्रकुलपटल है। द्वितीय पटल मन्त्रपटल है। तृतीयपटल देवतापटल है। चतुर्थ का नाम देवताभिषेकपटल है। पञ्चम का नाम तत्त्वपटल है। षष्ठ चर्यापटल है। सप्तम छोमापटल है। अष्टम योगिनीचक्र नामक महायोगिनियों का मेलापकपटल है। नवम का नाम विशुद्धिपटल है। दशम अभिषेकपटल है। एकादशपटल का नाम दृष्टिपटल है।

द्वितीयकल्प राज में कुल १२ पटल हैं, जिनमें प्रथम का नाम होमनिर्णयप्रतिष्ठापटल है। द्वितीय पटल का नाम सिद्धिनिर्णयपटल है। तृतीय सर्वतन्त्रनिदानसन्ध्याभाषपटल है। चतुर्थपटल का नाम हेवज्रसर्वतन्त्रमुद्रणपिण्डार्थ है। पञ्चम हेवज्राभ्युदयपटल है। षष्ठ हेवज्रपटविधानपटल है। सप्तम भोजनपटल है। अष्टम विनेयपटल है। नवम मन्त्रोद्धारपटल है। दशम जापपटल है। एकादश सहजार्थपटल है। द्वादश महातन्त्रराजमायाकल्पपटल है।

सामान्यतया बौद्धतन्त्र की दो प्रधान परम्पराएं उपलब्ध हैं। (१) दीर्घस्थ परम्परा और (२) समीपस्थ परम्परा। यहाँ दीर्घस्थ का अर्थ क्रमिक परम्परा

से है, जिसे सामान्य परम्परा भी कह सकते हैं। समीपस्थ परम्परा विशेष परम्परा है, जिसमें साक्षात् वज्रधर से धर्मश्रवण की बात कही गई है। इस विशेष परम्परा को कर्णतन्त्र परम्परा भी कह सकते हैं। इसमें साधक किसी पूर्वपरम्परा के विना इष्टदेव, अर्थात् शास्ता का साक्षात्कार कर सीधे तन्त्र को ग्रहण करता है। हेवज्रतन्त्र की ऐसी ही दो परम्पराएँ उपलब्ध होती हैं।

इस तन्त्र के रहस्यों को भारत के अनेक सिद्धाचार्यों ने अपनी-अपनी साधनानुसार प्रतिपादित किया है, जिसमें आचार्य विरुपाद द्वारा निष्पन्न क्रम की मार्गफल के नाम से प्रतिपादित साधना परम्परा है। आचार्य सरोरुपाद ने उत्पत्तिक्रम में कृष्णादि षड्वर्णयोग एवं उसमें आभास की प्राप्ति के बाद उत्पन्न क्रम में स्वाधिष्ठानक्रम और वायु के अवधूती नाडी में प्रवेश तथा उत्थापन के योग पर बल देते हुए स्वाधिष्ठान क्रम में वर्णों का क्रमशः साक्षात्कार करने की विधि की व्याख्या की है।

आचार्य व्यालिपाद अवधूती नाडी में प्राणवायु के प्रवेश पर बल देते हैं। चण्डाली के प्रज्वलन से हृदय-कमल में स्थित शुक्र के स्रवित होने से क्रमशः उत्पन्न चार आनन्दों का अनुभव करते हुए त्रैकालिक विकल्प, विज्ञान और मनोविज्ञान के प्रभास्वर में विलीन होने से महासुख स्वरूप देवकाय का उत्पाद किया जाता है।

हेवज्र के निष्पन्न क्रम में चार तत्त्वों से युक्त, चार मुद्रा से मुद्रित चार चक्र का आश्रय लेकर कर्ममुद्रा या मनोमय मुद्रा का सेवन कर साधनाभ्यास किया जाता है।

इस ग्रन्थ के सम्पादन एवं अनुवाद के क्रम में हमने राष्ट्रीय अभिलेखालय काठमाण्डू में उपलब्ध हस्तलिखित ग्रन्थों का भी उपयोग किया गया है। इसके अनेक संस्करण उपलब्ध हैं किन्तु हिन्दी अनुवाद प्रथमवार हुआ है। इससे पाठकगण अवश्य लाभान्वित होंगे। इसके साथ ही गुह्यसमाजतन्त्र का भी प्रकाशन हुआ है जिससे समस्त विद्वद्गण हर्षित होंगे ऐसा विश्वास है।

अब, कालचक्रतन्त्र, चण्डमहारोषणतन्त्र तथा महामाया तन्त्रों की अतिशीघ्र प्रकाशन कर पाठकों के हाथों में रखने के लिए हम संनद्ध हैं। इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए प्रकाशक श्री दिलीप कुमार जी के हम चिर ऋणी हैं ।

– सम्पादक एवं अनुवादक

प्रथम कल्प

प्रथमः वज्रकुल पटल

ओं नमः श्रीहेवज्राय। एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् सर्वतथागतकायवाक्चित्तहृदयवज्रयोषिद्भगेषु विजहार ॥ १॥

ॐ श्री हेवज्र को नमस्कार है। मैंने ऐसा सुना है। किसी एक समय भगवान् बुद्ध ने सभी तथागतों के काय, वाक्, चित्त एवं हृदयरूपी स्त्रियों के 'भगों' में विहार किया।

ऐसा मैंने सुना है यह वाक्य इस तन्त्र ग्रन्थ का मूल कारण है। 'मैंने ऐसा ही सुना है' अन्य किसी रूप में नहीं और किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से न सुनकर स्वयं भगवान् बुद्ध के मुखारविन्द से (मैंने ही) सीधा सुना है - यही इसका तात्पर्य है। किसी समय अर्थात् किसी निश्चित स्थान विशेष में सङ्गीति हुई थी वहीं पर मैंने सुना है। 'भगवान्' जिसमें समग्र - ऐश्वर्य, ज्ञान, यश, श्री, रूप और प्रयत्न की पूर्णता है वही भगवान् है। अर्थात् ऐश्वर्य, ज्ञान, यश, श्री, रूप और प्रयत्न ही भग हैं, जिसमें वे हैं वही 'भगवान्' है। 'विहार करते थे' चार - बुद्ध के विहार हैं - (१) ईर्यापथ विहार, (२) देशना विहार, (३) समापत्ति विहार और (४) प्रतिसंलयन विहार। भगवान् बुद्ध का शारीरिक कर्म ही ईर्यापथविहार है। भगवान् बुद्ध का वाचिककर्म ही देशनाविहार है। भगवान् बुद्ध का मानसिककर्म ही समापत्तिविहार है। धर्मोपदेश एवं देवताविशेष के साथ किया जाने वाला मानसिक कर्म ही प्रतिसंलयनविहार है। कहाँ विहार किया? सभी तथागतों के काय वाक् चित्त रूपी त्रिगुह्य में विहार किया। साथ ही वज्रयोषिद् - लोचना आदि के जो अनास्रव-आनन्द-धर्मधर्मतारूप शरीर हैं वे ही उनके 'भग' कहलाते है, उनमें विहार किया। यह स्थान कहाँ है? अत्यन्त गोपनीय क्षेत्रविशेष में ही अतिगंभीर धर्म का उपदेश संभव होने से निश्चित रूप में अत्यन्त गुह्य धर्म भगवान् द्वारा उपदिष्ट होने वाला है ऐसा सभी तथागत - वज्रगर्भ आदि बोधिसत्त्व तथा लोचना आदि एवं गौरी आदि वज्र योगिनियों ने समझ लिया था। इसी से यह उपदेश संभव हुआ है। यही हेवज्र उपदेश का मुख्य आधार है।

तत्र भगवानाह - सर्वतथागतकायवाक्चित्तहृदय भट्टारकं गुह्यातिगुह्यतरं इति । अहो वज्रगर्भ साधु साधु महाकृप महाबोधिसत्त्व बोधिसत्त्वस्य वज्रसत्त्वस्य महासत्त्वस्य समयसत्त्वस्य ज्ञानसत्त्वस्य हृदयं हेवज्राख्यं शृणु ॥ २ ॥

उस विहार के अवसर में भगवान् बुद्ध ने कहा - सभी तथागतों के काय (शरीर), वाक् (वचन) चित्त (मनस), एवं हृदय रूप परमदेवता (उच्चतम देवता) अति गोपनीय एवं परम गोपनीय हैं। हे अति आश्चर्ययुक्त वज्र गर्भ! तुम साधुवाद के उच्चपात्र हो!! हे कृपासिन्धु! बोधिसत्त्व वज्रसत्त्व - महासत्त्व एवं समयसत्त्वों के हेवज्र नामक हृदय को सुनो।

'तत्र' उस विहार के अवसर में। आह (कहा) समग्र श्रोताओं के उत्कण्ठा के लिए ही कहा ऐसा बताया गया है। तथागतः = जैसा मार्ग हो उसी में जाने से तथागत कहा गया है। अथवा यथार्थवेत्ता ही तथागत है। कायवाक्चित्तम् = वे ही वज्रधर हैं। हृदयम् = अर्थात् हृदय ही सार है। भट्टारक = उच्च देवता ही भट्टारक कहलाते हैं। अतिगुह्य = प्रपञ्चरहित ज्ञानात्मक मन्त्रदेवताओं के सभी काय, वाक् एवं चित्त गुह्य हैं क्योंकि श्रद्धा के लिए भी अज्ञेय होने से। हेवज्रम् = हेवज्ररूप काय, वाक् एवं चित्त परम रौद्र अथवा रौद्र स्वभाव बढ़ा हुआ होना ही हेवज्र है। गुह्यातिगुह्य = अतिदुर्लभ उपास्य होना ही अतिगुह्य है। श्रोताओं के मन में यह भाव उत्पन्न हुआ कि इस गुह्य तत्त्व का व्यक्ति कौन है यह बताना चाहिए। वज्रधार से दूसरा नहीं हो सकता और इसका सार ही काय वाक् चित्त है एवं इस परमदेवता का नाम क्या है? वे वितर्क उत्पन्न हुए इसीलिए भगवान् ने कहा अहो ---- इत्यादि। अहोवज्रगर्भ = सभी बोधिसत्त्व वज्रगर्भ एवं तथागत गोत्र सम्बद्ध हैं यही इसका अर्थ है। तथागतकुल = मोह - द्वेष - राग - मान - ईर्ष्या ही तथागत कुल हैं। वज्रगर्भ = द्वेष गोत्र ही वज्रगर्भ है। बोधिसत्त्व के लिए यह अत्यन्त दुर्लभ गोत्र माना जाता है। अहो! इसीलिए आश्चर्यपूर्ण संबोधन अहो कहकर किया गया है। साधु ---- महाबोधि परम रुद्ररूप के कारण सभी उपायों के द्वारा परार्थ सिद्धि के लिए निरन्तर लगने से करुणापूर्ण हैं इसीलिए इन्हें महाकृप ऐसा कहा है। स्वहित एवं परहित के लिए काम करने के कारण इन्हें साधु-साधु दो बार कहकर सहराया गया। शृणु = सुनो - सभी लोगों को इसके श्रवण के लिए प्रवृत्त कराने हेतु सुनो ऐसा कहा गया है। वज्रसत्त्व --- हृदयम् - वज्रधर से बड़ा कोई भी नहीं है, साथ ही महाकरुणा प्रधान होने से वज्रकुल का हेवज्र और वज्रधर का उच्च अवस्थान है। इसीलिए उसका हृदय ऐसा कहा गया है। सार = रहस्य बतलाने के लिए ही हृदयार्थ ऐसा कहा गया है। हेवज्राख्यम् - हेवज्र ही इसका नाम है ऐसा कहा गया है।।

वज्रगर्भ उवाच-

वज्रसत्त्वो भवेत् कस्मात् महासत्त्वो भवेत् कथम् ।
समयसत्त्वो भवेत् केन कथयतु भगवान् मयि ॥ ३ ॥

वज्रगर्भ ने कहा - हे भगवन् किस कारण से एवं कैसे वज्रसत्त्व का उदय होता है? साथ ही कैसे महासत्त्व होता है? किस कारण से समय सत्त्व का उदय होता है भगवान् कृपा करके मुझे बतायें।

यहाँ तीन प्रश्न किए गये हैं। क्योंकि इन प्रश्नों से ही 'वज्रधर' का महात्म्य प्रकट होने वाला है।

भगवानाह-

अभेद्यं वज्रमित्युक्तं सत्त्वं त्रिभवस्यैकता ।
अनया प्रज्ञया युक्त्या वज्रसत्त्व इति स्मृतः ॥ ४ ॥

भगवान् ने कहा - जिसका भेदन करना संभव नहीं है उसे ही वज्र कहा जाता है। काय, वाक् एवं चित्त की एकता ही सत्त्व है। जो सत्त्व इस प्रकार की प्रज्ञा से युक्त है उसे ही वज्रसत्त्व के रूप से स्मरण किया जाता है।

सत्त्व शब्द अत्यन्त शुद्धता एवं धर्मकाय के अर्थ में प्रयुक्त है। पुरुष की शुद्धि ही विमुक्त काय है। वही धर्मकाय है। ब्रह्म धर्म का काय ही निवास स्थान है, वहीं आश्रयभूत बीज भी है। उसे धारण करने से धर्मकाय कहा गया है। धर्मकाय का मूल शरीर मन आदि का आश्रय भूत धर्मधातु होने से वह प्रकृतिप्रभास्वर है और हमेशा उसी रूप में रहने से उसे ही तथता भी कहते हैं। - कभी भेदन न होने के कारण ही अभेद्य वज्र कहा जाता है।

महाज्ञानरसैः पूर्णो महासत्त्वो निगद्यते ।
नित्यं समयप्रवृत्तत्वात् समयसत्त्वोऽभिधीयते ॥ ५ ॥

महाज्ञानरसों से परिपूर्ण ही महासत्त्व कहलाते हैं। नित्यरूप में समय की प्रवृत्ति होने से ही उसे 'समय सत्त्व' कहा गया है।

महाज्ञान अर्थात् महायान स्वभावात्मक शुद्धधर्म है उनके रसों का आश्वादन ही महाज्ञान रस है उसे ही संभोग भी कहा जाता है। उसी महाज्ञान रसों से पूर्ण बुद्ध के साम्भोगिक काय को महासत्त्व कहा गया है। वह नित्य है क्योंकि कदापि उसका विनाश नहीं होता। अपने पूर्णता में समय होने से पूर्ण आकार के साथ वह है इसी से वह महा समय सत्त्व है और बुद्धों के अनन्त प्रभेद ही निर्माणकाय है। वह नित्य होने से महासमय कहा गया है। भगवान् वज्रधर ही धर्मकाय में वज्रसत्त्व कहलाते हैं। संभोगकाय के कारण महासत्त्व कहलाते हैं। निर्माणकाय के कारण महासमय सत्त्व कहलाते हैं।

बोधिचर्यासमासेन बोधिसत्त्वो निगद्यते।

प्रज्ञाज्ञानसमायोगाज्ज्ञानसत्त्वस्तथागतः ॥

बोधिचर्या को ही संक्षेप में बोधिसत्त्व कहा गया है। और प्रज्ञा ज्ञान के समायोग = मिलन से, अर्थात् जिस बोधिसत्त्व में प्रज्ञा-ज्ञान का उदय होता है वह ज्ञानसत्त्व कहलाता है।

वज्रगर्भ उवाच-

हेवज्रं तु भवेत् केन ईदृशं नामसंग्रहम् ।

हेकारेण किमाख्यातं वज्रेणापि किमुच्यते ॥ ६ ॥

वज्रगर्भ ने पूछा [हे भगवन्] हेवज्र किस कारण से होता है? किस कारण से इस प्रकार का नाम संग्रह किया गया है? हे कार से किसका बोध होता है? वज्र शब्द का क्या अर्थ है? ।

यहाँ तीन प्रश्न किए गए हैं। क्योंकि हेवज्र का केवल नाम मात्र से संकेत किया गया था अब उसका विवरण ज्ञान के लिए, साथ ही हेवज्र का क्या रहस्य है और 'वज्र' शब्द का अर्थ भी तो अबतक आया नहीं। इन्हीं कारणों से वे प्रश्न किए गए है।

भगवानाह-

हेकारेण महाकरुणा वज्रं प्रज्ञा च भण्यते ।

प्रज्ञोपायात्मकं तन्त्रं तन्मे निगदितं शृणु ॥ ७ ॥

भगवान् ने कहा - हे कार से महाकरुणा का बोध किया जाता है। वज्र शब्द से प्रज्ञा का ज्ञान किया जाता है। इसीलिए प्रज्ञा एवं उपायात्मक होने से इसे तन्त्र कहा गया है। उसका मैने ही उपदेश किया है उसे तुम सुनो।

अत्यन्त दुष्ट रौद्र सत्त्वों के अनुशासन हेतु परम रौद्र काय-वाक्-कर्मों को दिखाने वाली महाकरुणा का उपदेश किया गया है। उत्कृष्ट ज्ञान को प्रज्ञा कहा गया है। वही अद्वय ज्ञान है। यहाँ पर शून्यता को ही प्रज्ञा कहा गया है। प्रज्ञा, शून्यता और उपाय ही महाकरुणा है, वही प्रज्ञोपाय है। इसी से हेश्च वज्रश्च ऐसा विग्रह करके सर्वधर्म शून्यता के आलम्बन को महाकरुणा कहा गया है वही हेवज्र भी है। तन्त्र शब्द का अर्थ ग्रन्थ-पुस्तक है। वह भी तीन प्रकार का है। हेतुतन्त्र, फलतन्त्र और उपाय तन्त्र। हेवज्र भी तीन प्रकार का है - हेतु हेवज्र, फल हेवज्र और उपाय हेवज्र। हेतु का अर्थ है गोत्र अथवा कुल। यहाँ वज्रकुल ही महाकरुणा प्रज्ञा प्रधान होने से, कुशलों के पात्रों का कारण भी हेवज्र होने से इसे हेतु तन्त्र कहा गया है। इसी से हेवज्र हेतु होने से यह हेवज्र है। हेतु हेवज्र के बल से उपाय हेवज्र को बहुत समय तक अभ्यास द्वारा लब्ध महावज्रधर पद ही फल हेवज्र है। अतएव इसे फलतन्त्र

कहा गया है। फिर क्यों इसे हेवज्र कहा गया है? हेवज्र फल होने से। क्यों प्रबन्ध या पुस्तक कहा गया है? अनन्त बुद्ध धर्ममय होने से इसे प्रबन्ध या पुस्तक कहा गया है। महाकरुणा-प्रज्ञा-प्रधान होने के कारण कुशल प्रबन्धात्मक मुख्य हेवज्र ही प्रमुख उपाय तन्त्र ग्रन्थ है।

दृष्टय्कृष्टि महाच्छोमं सामर्थ्यं बहुविधं विदुः ।
स्तम्भनोच्चाटनं चैव सैन्यस्तम्भाभिचारुकम् ॥ ८ ॥

[उपाय तन्त्रों के विषय में भगवान् कह रहे हैं -] दृष्टिमात्र से आकृष्ट करना, क्षोभ उत्पन्न करना, बहुविध सामर्थ्य का होना, स्तम्भन करना (रोकना), उच्चाटन (मानसिक रूप से पूर्ण अस्थिर करना) करना, सेनाओं का स्तम्भन करना वह भी ठीक से, अच्छे प्रकार से करना यही इस उपाय तन्त्र से किया जाता है।

इस प्रकार बहुत अधिक सामर्थ्य का बल का होना और विभिन्न प्रकार से वर्षा कराना, मेघों से शब्द उत्पन्न करना और भी अनेक विचित्र कृत्यों का करना ही उपाय कहलाता है।

योगिनीनां यथान्यायमुत्पत्तिस्थितिकारणम् ।
सामर्थ्यं ज्ञानविज्ञानं देवतानां यथोदयम् ॥ ६ ॥

योगिनियों के अपने सामर्थ्य के अनुसार ही, उत्पत्ति और स्थिति का कारण होना, ज्ञान विज्ञान तथा देवताओं का क्रमशः उत्पत्ति भी इन्हीं उपायों द्वारा संभव होता है।

यहाँ पर उत्पत्ति का अर्थ आकार = स्वरूप आदि का चिह्न एवं स्थिति का अर्थ आधार मण्डल है। कारण का अर्थ चन्द्र सूर्य आदि। सामर्थ्य काअर्थ है जप भावना का उत्कर्ष। ज्ञान का अर्थ ज्योतिष विद्या। विज्ञान - सभी आचार्यों की कर्म कुशलता। देवता यहाँ हेरुक जो सपरिवार हैं अथवा नैरात्म्यज्ञान।

प्रथमं तावद् भवेदेकं हेरुकोत्पत्तिकारणम् ।
भावेनैव विमुच्यन्ते वज्रगर्भ महाकृप ॥ १० ॥

महाकृपालु - हेवज्रगर्भ, सबसे पहले हेरुक के उत्पत्ति का कारण एक ही है। उसके बाद उसकी भावना = साधना के द्वारा सभी प्राणी मुक्त होते हैं।

एक का अर्थ है दृष्टि आदि से होने वाला आकर्षण, 'हेरुक' का अर्थ है फल हेवज्र, उसकी उत्पत्ति, उस पद की प्राप्ति, उसका कारण अर्थात् उपायतन्त्र ही है। क्यों इसे एक कहा गया है? क्योंकि देवता आदि महोपाय बहुलों के उत्पत्ति क्रम होने से श्रेष्ठ है इसीलिए वह एक

है। 'भाव द्वारा ही मुक्ति होती है' इसका तात्पर्य है – जिस आकारवाली हेरुक की योगिनियों की मन्त्र चिह्न युक्त आसन आदियों की भावना है वही प्रपञ्चों की कारयित्री है इसीलिए मोक्षसंभव नहीं है इस आशय का निराकरण हेतु यह कहा गया है। भाव का अर्थ – अन्तिम रूप से बुद्धधर्म में स्थापित होना या प्राप्त होना है – वह – षट्पारमिता ही हो सकता है जिससे बुद्धत्व उपलब्ध होता है। उसी से महाकारुणिक विमुक्त होते हैं। अतएव किसी एक पारमिता से न होकर षट्पारमिताओं से ही मुक्ति संभव है ऐसा दिखलाया गया है।

बध्यन्ते भावबन्धेन मुच्यन्ते तत्परिज्ञया ।
भावं भाव्यं भवेत् प्राज्ञ अभावं च परिज्ञया ।
तद्वच्छ्रीहेरुकं भाव्यं अभावं च परिज्ञया ॥ ११ ॥

भावों के साथ एकाकार होने से बन्धन होता है और उसके रहस्य के बोध से मुक्ति होती है। इसीलिए भगवान् श्री हेरुक की आराधना करनी चाहिए। और उनके अभाव का परिज्ञान अर्थात् बोध भी होना आवश्यक है।

यहाँ भाव बन्धन का अर्थ पाँचारमिताओं के साथ सम्बन्ध के लिए ही प्रयुक्त है। क्योंकि बोधिसत्त्व या साधक जब पाँच ही पारमिताओं में रत होता है वह जगत् के कल्याणार्थ संयुक्त होत है इसी से वह मुक्ति की ओर नहीं जाता। अतएव वह बन्धन है। उसके रहय बोध से मुक्त होता है का तात्पर्य है प्रज्ञा पारमिता के बोध ही निर्वाण की अस्था होती है। 'भावं भाव्यम् ' भाव के उपासना का अर्थ है पाँच पारमिताओं को प्रयत्नपूर्वक अपने चित्त में रखकर अभाव का ज्ञान अर्थात् ग्राह्य ग्राहक स्वभाव रहित प्रज्ञा पारमिता का उदय करना ही है। इस प्रकार श्री हेरुक को भी प्रयत्नपूर्वक अपने चित्तासन में बिठाकर अभाव यानी प्रज्ञापारमिता में स्थित होना ही इसका तात्पर्य है। इस प्रकार यहाँ उपायतन्त्र का उत्पत्तिक्रम से निर्देश किया गया है।

देहस्थं च महाज्ञानं सर्वसंकल्पवर्जितम् ।
व्यापकः सर्ववस्तूनां देहस्थोऽपि न देहजः ॥ १२ ॥

देह में अवस्थित वह महाज्ञान है। जिस ज्ञान से साधक सभी संकल्पों से रहित होता है और वह महाज्ञान स्वयं भी समग्र कल्पनाओं से रहित है। वह परम तत्त्व देह में ही है फिर भी देह से उत्पन्न नहीं है। वह सर्वत्र व्यापक है, सभी पदार्थों में अवस्थित भी है।

यहाँ पर उत्पन्न क्रम को लेकर उपायतन्त्र की ओर ग्रन्थकार उन्मुख हुए हैं। महाज्ञान अर्थात् सभी बुद्ध धर्मों के बीज रूप होने से वह महान् है। देह को ही आधार बनाकर वह ज्ञान रहता है। क्योंकि शरीर ही उसके कर्मों के अधीन है, उन कर्म फलों के द्वारा समुत्पन्न

वेदना उसी में हैं। अतएव 'देहस्थम् ' ऐसा विशेषण दिया गया है। उस ज्ञान की जो 'तथता' और 'धर्मता' है वही बुद्ध गोत्र भी है। फिर वही बुद्ध धर्मों का भी गोत्र है। वह सर्वसंकल्परहित है का अर्थ है देह प्रतिष्ठाभोग आदि रहित प्रकृति से ही निर्मल होने से संकल्परहित सुविशुद्ध धर्म धातु रूप है। वह संकल्परहित महाज्ञान हेवज्र ही है। व्यापक का अर्थ है भगवान् बुद्ध के ज्ञान में समग्र पदार्थों का निषेध होने से, वे सारे दृश्यमान पदार्थ ज्ञान के अतिरिक्त नहीं है इसी से जो भी ज्ञान है वह व्यापक है क्योंकि उस ज्ञान के अतिरिक्त पदार्थों की सत्ता नहीं है। देह में रहकर भी देह से उत्पन्न नहीं है का तात्पर्य है ज्ञान के अतिरिक्त शरीर नहीं है। यदि ज्ञान रूप देह की कोई कल्पना भी है तो वह भी मिथ्या ही है। द्वय के अन्तर्गत आने वाले समस्त पदार्थ नहीं है। केवल अद्वय तत्त्व ही व्यवस्थित है। इसीलिए देह = शरीर आदि के रूप में जो कुछ प्रतीत होता है वह सब ज्ञान ही है।

वज्रगर्भ आह- हे भगवन्! वज्रदेहे कतमा नाड्यः। भगवानाह- द्वात्रिंशन्नाड्यः। द्वात्रिंशद् बोधिचित्तावहा महासुखस्थाने स्रवन्ते। तासां मध्ये तिस्रो नाड्यः प्रधानाः। ललना रसना अवधूती चेति ॥१३॥

वज्रगर्भ ने पूछा - हे भगवन् ! इस वज्र देह में कितनी नाडियाँ हैं? भगवान् ने कहा - बत्तीस नाडियाँ हैं। बत्तीस बोधिचित्तों के देवताओं को वहन करने वाली बत्तीस नाडियाँ शिर के मध्यभाग में प्रवाहित होती रहती हैं। उनमें से तीन नाडियाँ प्रधान हैं। वे हैं ललना, रसना और अवधूती।

नाडियों के विषय में सन्देह होने से प्रश्न किया गया कितनी कुल नाडियाँ हैं? क्योंकि बत्तीस प्रकार के बोधिसत्त्व हैं इसीलिए उनके देवता भी बत्तीस हैं अतः उनको वहन करने वाली वे नाडियाँ भी तो बत्तीस ही हैं। वे बत्तीस देवतायें वज्रयोगिनियाँ हैं। महासुखस्थान शिर के मध्य (सहस्रार) भाग ही है। जहाँ से बोधिचित्तों का प्रवाह शरीर की ओर निरन्तर होता ही रहता है जैसे हिमालयों से नदियाँ निकलती ही रहती हैं।

ललना प्रज्ञास्वभावेन रसनोपायसंस्थिता।
अवधूती मध्यदेशे ग्राह्यग्राहक-वर्जिता ॥१४॥

उन तीन प्रमुख नाडियों में 'ललना' प्रज्ञा स्वभावयुक्त है। 'रसना' उपाय स्वभाव को धारण करती है। और 'अवधूती' मध्यदेश में विराजमान है साथ ही ग्राह्य एवं ग्राहक स्वभाव रहित होकर रहती है।

प्रज्ञा स्वभाव ललना का अर्थ है चन्द्रनाडी अर्थात् शीतल रस से परिपूर्ण है। उपाययुक्त का अर्थ रक्त को वहन करने वाली वह सूर्यरश्मियों से पूर्ण, उष्णता से भरी हुई है। ग्राह्यग्राहक वर्जित अर्थात् इसमें चन्द्र-सूर्य तत्त्व साहित्य का द्योतन करती है यह मध्य में है उष्णता एवं शीतलता

दोनों इसमें नहीं हैं। मध्यदेश का अर्थ भी शिर, कण्ठ, हृदय, नाभि और योनि वे ही मध्यदेश हैं। यहाँ प्रधान तीन नाडियाँ है – नैरात्म्य योगिनियाँ।

अक्षोभ्यावहा ललना रसना रक्तवाहिनी ।
प्रज्ञाचन्द्रावहा ख्यातावधूती सा प्रकीर्तिता ॥ १५ ॥

ललना नाडी स्वयं अक्षोभ्य को वहन करती है। रसना रक्तों को वहन करती है। अवधूती प्रज्ञारूपी चन्द्र को वहन करती है – ऐसा प्रख्यात है।

अभेद्या सूक्ष्मरूपा च दिव्या वामा तु वामिनी।
कूर्मजा भावकी सेका दोषा विष्टा च मातरी ॥ १६ ॥

अभेद्या, सूक्ष्मरूपा, दिव्या, वामा, वामनी, कूर्मजा, भावकी, सेका, दोषा, विष्टा और मातरी वे नाडियाँ हैं।

'अभेद्या' नाडी शिर में रहकर नाखून एवं दाँतों का वहन करती है 'सूक्ष्मरूपा' नाडी शिखा में रहकर केश और रोमों का वहन करती है। 'दिव्य' नाडी दक्षिण कान में रहती है। 'वाम' नाडी पिछले भाग में रहती है। 'वामनी' बायें कान में रहती है। 'कूर्मजा' दो भौहों के बीच में रहती है। 'भावकी' दोनों आँखों में है। 'सेका' दोनों बाहुओं में रहती है। 'दोषा' दोनों पार्श्वभागों में रहती है। 'विष्टा' यह दोनों स्तनों में रहती है, तथा 'मातरा' नाभि में रहती है।

शवरी शीतदा चोष्मा ललनावधूती रसना ।
प्रवणा कृष्णवर्णा च सुरूपिणी सामान्या हेतुदायिका ॥ १७ ॥

इसी प्रकार अन्य नाडियों में शबरी, शीतदा, ऊष्मा, ललना, अवधूती, रसना, प्रवणा, दृष्टा, स्वरूपिणी, सामान्या और हेतुदायिका हैं।

साथ ही – वियोगा, पेमणी, सिद्धा, पावकी, सुमना, त्रिवृत्ता, कामिनी, गेहा, चण्डिका और मारदारिक वे ही ३२ नाडियाँ हैं।

वियोगा प्रेमणी सिद्धा पावकी सुमनास्तथा ।
त्रैवृत्ता कामिनी गेहा चण्डिका मारदारिका ॥ १८ ॥

'शबरी' नासिका के अग्रभाग में रहती है। 'शीतदा' मुख में, 'उष्मा' घाँटि में रहती है। 'ललना' 'अवधूती' और 'रसना' का वर्णन किया जा चुका है। 'प्रवणा' हृदय में, 'दृष्टा' लिङ्ग के मूल में, स्वरूपिणी लिङ्ग में, 'सामान्या' गुदद्वार में, 'हेतुदायिका' जङ्घाओं में रक्तवहन करती रहती है। इसी प्रकार 'वियोगा' जङ्घाओं में पसिनों को वहन करती है। 'प्रेमणी' पैर के अंगुलियों में, 'सिद्धा' पाद के पिछले भाग में, 'पावकी' अङ्गुष्ठ में 'सुमना' घुटनों में रहती हैं। 'त्रिवृत्ता', 'कामिनी', 'गेहा', 'चण्डिका' और 'मारदारिका' वे सब क्रमशः हृदय रूपी कमल में क्रमशः रहती हैं।

वज्रगर्भ उवाच-

एता द्वात्रिंशन्नाड्यो भगवन् कीदृशाः ॥ १९ ॥

वज्रगर्भ ने पूछा - हे भगवन् ! वे बत्तीस नाडियाँ किस प्रकार की हैं । [कृपया आप बतावें -]

भगवान् को यह प्रश्न किया जा रहा है कि यदि, वे उपर्युक्त नाडियाँ लोक में पहले से ही प्रसिद्ध हैं यह बताने का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। और अद्वय प्रकाशात्मक रूप से भी है तो सम्भोग काय लक्षणात्मक योगिनीमण्डल नहीं हो सकता!! इसीलिए प्रश्न किया गया है।

भगवानाह-

त्रिभवपरिणताः सर्वा ग्राह्यग्राहकवर्जिताः ।
अथवा सर्वोपायेन भावलक्षणकल्पिताः ॥ २० ॥

भगवान् ने कहा - ये सब नाडियाँ त्रिभव में परिणत हैं साथ ही ग्राह्य-ग्राहक वर्जित भी हैं। अथवा सभी उपायों के द्वारा भावलक्षण में कल्पित हैं।

सभी बुद्धधर्मों का एकरस रूप स्वभाव ही धर्मकाय है वही फिर त्रिभव है। उसी में परिणत होना ही त्रिभव परिणत होना है। 'सर्वा' सभी नाडियाँ। ग्राह्य ग्राहक वर्जित अर्थात् अद्वयप्रकाशरूप हैं। भाव का अर्थ लोकप्रसिद्ध नाडी है। सभी तथागतों के द्वारा कल्पित भी हैं। सभी उपायों से क्योंकि समग्र जगत् के काम (कल्याण) के लिए सम्भोग काय द्वारा कल्पित बुद्धधर्म ही 'सर्वोपाय' है। वही योगिनियों का तत्त्व है, वही नाडियों का भी गन्तव्य स्थान है। इसी से सिद्ध होता है कि नाडी चक्र ही योगिनी मण्डल भी है। वह अपने शरीर में रहते ही महाज्ञानरूप 'हेवज्र' है। स्वदेहस्थ नाडीचक्र ही उनका योगिनीमण्डल भी है।

संवरभेदश्च कथ्यते- आलि-कालि-चन्द्र-सूर्य-प्रज्ञोपाय-धर्म-सम्भोग-निर्माण-महासुख-काय-वाक्-चित्तम् एवं मया ॥ २१ ॥

अब, संवर के भेदों को बताया जाता है - (वे हैं) आलि, काली, चन्द्र, सूर्य, प्रज्ञा, उपाय, धर्म, संभोग, निर्माण, महासुख, काय, वाक्, चित्त, एवं माया - वे ही संवर हैं।

अत्यन्त गंभीर उत्पन्न क्रम को यहाँ भगवान् उपस्थापित कर रहे हैं। बाह्य धर्मों का रूपान्तर जो अध्यात्म रूप में होता है, उसे योगी को देखना चाहिए वही उनका 'संवर' है। शरीर के द्वारा वरण करने के कारण भी वह 'संवर' कहा जाता है और संक्षिप्त रूप में वर्णित होने से भी वह 'संवर' है। १५ स्वर ही 'आलि' हैं। ३४ व्यञ्जन ही 'कालि' हैं। परन्तु यहाँ पर

१५ + ३४ के ग्राहक 'व' तथा 'हूँ' नाभि – हृदय – मणिपूर में स्थित हैं वे ही आलि काली हैं। वे 'चन्द्र' 'सूर्य' प्रज्ञा और उपाय हैं, नैरात्म्य – हेरुक स्वभावात्मक हैं। धर्म, संभोग, निर्माणकाय – क्रमशः काय, वाक् और चित्त ही हैं। उन्हीं तीनों तथागत गुह्यों का निरुत्तर सुख एक रस ज्ञान ही महासुख रूप है, वही चतुर्थ है। वे सभी चक्र 'एवं', 'मया', निर्माण, धर्म, संभोग, महासुखचक्र – यथाक्रम से 'एवं' 'मया' – स्वभाव लोचनादि चार देवियों के स्वभाव हैं।

ए-कारेण लोचना देवी वं-कारेण मामकी स्मृता।
म-कारेण पाण्डुरा च या-कारेण तारणी स्मृता ॥ २२ ॥

'एवं' में 'ए' कार से 'लोचना' नामक देवी और 'वं' कार से 'मामकी' नामक देवी का बोध होता है। 'मया' में 'म' कार से पाण्डुरा देवी और 'या' कार से 'तारणी' नामक देवी को जानना चाहिए।

इस प्रकार 'एवं मया श्रुतम्' यह वाक्य प्रायः सभी पारमिता ग्रन्थ तथा तन्त्र ग्रन्थों के प्रारंभ वाक्य है। इस वाक्य का भाषागत अर्थ 'ऐसा मैंने सुना है' होता है। किन्तु इस वाक्य का गंभीर अर्थ है ओर वह चार उपास्य – लोचना, मामकी, पाण्डुरा और तारिणी देवी देवियों के प्रतीक हैं ।

निर्माणचक्रे पद्मं चतुःषष्टिदलम्। धर्मचक्रे अष्टदलम्। संभोगचक्रे षोडशदलम्। महासुखचक्रे द्वात्रिंशद्दलम्। चक्रसंख्याक्रमेण व्यवस्थापनम् ॥ २३ ॥

निर्माण चक्र में अवस्थित पद्म ६४ दलों से युक्त है। धर्मचक्र में अवस्थित पद्म ८ दलों से युक्त है। संभोग चक्र में स्थित कमल १६ दलों वाला है। महासुखचक्र में अवस्थित कमल ३२ पत्रों से युक्त है। चक्रों की संख्या क्रम से ही व्यस्थित हैं।

इन कमलों में किस देवता को जानना चाहिए? 'अ' 'हूँ' 'ॐ' 'हं' क्रमशः ये देवता हैं। इनमें जो महासुख कमल है वह अधोमुख है इसीलिए उसका देवता 'हं' कार भी अधोमुख ही है । वह अधोमुख होने से अमृत रस वहाँ से बहता है। अर्थात् उसका क्षरण होता है। चक्र संख्या की बात आगे बतलाये जाने वाले क्षणों को लेकर है और वहीं पर इसकी चर्चा होगी।

चत्वारः क्षणाः -विचित्र-विपाक-विमर्द-विलक्षणाश्चेति ॥ २४ ॥

क्षण चार हैं – विचित्र क्षण, विपाक क्षण, विमर्दक्षण, और विलक्षण क्षण ।

इन चार क्षणों का रहस्य द्वितीय कल्प के तृतीय पटल में किया जायेगा ॥

चत्वार्यङ्गानि-सेवा-उपसेवा-साधना-महासाधनाश्चेति ॥ २५ ॥

अङ्ग चार हैं - सेवा, उपसेवा, साधना और महासाधना।

इसका सम्बन्ध उपर्युक्त क्षणों के साथ है ।

चतुरार्यसत्यानि-दुःख-समुदय-निरोध-मार्गाश्चेति ॥ २६ ॥

आर्य सत्य चार हैं - दुःख, दुःख समुदय (कारण), दुःख-निरोध एवं निरोध का मार्ग।

चार आर्य सत्यों का विषय ही योगियों का कर्म है। दुःख का पूर्णज्ञान के बाद उसके कारणों पर जाकर. कारण जानने के बाद ही उसका नाश संभव है। दुःख निरोध के साक्षात्कार का नाम ही मार्ग है।

चत्वारि तत्त्वानि-आत्मतत्त्वं-मन्त्रतत्त्वं-देवतातत्त्वं-ज्ञानतत्त्वं चेति ॥ २७ ॥

तत्त्व चार हैं - आत्मतत्त्व, मन्त्रतत्त्व, देवतातत्त्व और ज्ञानतत्त्व।

आत्मतत्त्व का अर्थ है विज्ञप्ति मात्रता। मन्त्र तत्त्व का अर्थ है अकारादि। देवतातत्त्व हेवज्रादि। ज्ञानतत्त्व - निष्प्रपञ्च अनुत्तर सुखज्ञान ही है।

चत्वार आनन्दाः-आनन्दः परमानन्दो विरमानन्दः सहजानन्दश्चेति ॥ २८ ॥

आनन्द चार हैं - आनन्द, परमानन्द, विरमानन्द और सहजानन्द ।

इन आनन्दों का रहस्य आठवें पटल और दशम पटल में किया जाएगा।

चत्वारो निकायाः-स्थावरी सर्वास्तिवादः संविदी महासंघी चेति ॥ २९ ॥

निकाय चार हैं - स्थविरवादी निकाय, सर्वास्तिवादी निकाय, संविदी निकाय और महासंघी निकाय ।

निकाय का अर्थ भिक्षु संघ है। स्थविरवादी भिक्षुगण निर्माण चक्र में स्थित पृथिवी तत्त्व में ध्यानस्थ होते हैं। सर्वास्तीवादीगण धर्मचक्र में अवस्थित होते हैं। संविदीगण सम्भोगचक्र में अवस्थित होते हैं। महासंघीगण सुखचक्र में अवस्थित महासुख रस में अवस्थित होते हैं। अन्त में वे सभी चतुष्क-अचुष्कचक्र में मुक्त होते हैं।

चन्द्र-सूर्य आलि-कालि षोडशसंक्रान्तिश्चतुःषष्टिदण्डो द्वात्रिंशन्नाडी चत्वारः प्रहरा एवं सर्वे चत्वारः ॥ ३० ॥

चन्द्र, सूर्य, आलि, कालि, १६ संक्रान्ति, ६४ दण्ड, ३२ नाडियाँ, ४ प्रहर (समय) इसी प्रकार अन्य सभी चार के समूह भी यहाँ बताए गए हैं।

वस्तुतः हेवज्र स्वयं ही अनन्त मन्त्रों का जनक है, साथ ही प्रकाशमय भी है, उसका उपलक्षण योग है उसी योग के विषय में यहाँ वर्णन किया गया है। कण्ठ से लेकर नाभि तक

वामपार्श्व भाग में अधोमुखी जो नाडी है वह चन्द्र है – वही आलि है, क्योंकि वह बोधिचित्त की वाहिका है। जो नाडी से ऊर्ध्व मुख होकर कण्ठ तक दक्षिण पार्श्वभाग में रहती है वह सूर्य है, वही कालि भी है – क्योंकि उसमें रक्त प्रवाहित रहता है। वामनाडी प्रवेशमार्ग है। दक्षिण नाडी निष्काशन मार्ग है। उनके लिए दोनों नासाछिद्र द्वार हैं। १६ संक्रान्ति का अर्थ है – नासिका के दोनों छिद्रों में आधा-आधा याम (समय) में संचरित होने वाले अहोरात्र (रात दिन) में १६ होते हैं। ६४ दण्ड का अर्थ है – अहोरात्र के द्वारा होने वाला कृत्य दण्ड है वही आधा नाडी है। ३२ नाडियाँ भी अहोरात्र में ही हैं। प्रहर का पाद 'घटी' है वही नाडी है। प्रहर चार हैं रात में तथा दिन में भी इस प्रकार अहारात्र में आठ होते हैं। सभी चार अर्थात् चार महाभूत।

चण्डाली ज्वलिता नाभौ दहति पञ्चतथागतान्।
दहति च लोचनादीः दग्धे हं स्त्रवते शशी ॥ ३१ ॥

चाण्डाली शक्ति नाभि देश में वृद्धि को प्राप्त होती हुई पाँच तथागतों को तथा लोचनादि देवियों को 'हं' कार रूप अमृतनिष्यन्दि चन्द्र रस से आप्लावित करती है।

यहाँ बोधिचित्त को ही आध्यात्मिक योग कहने के लिए नाभिस्थ चाण्डाली, हृदय में अवतीर्ण बिन्दु बीज रूप हेवज्र के साथ एकाकार होकर बोधिचित्त के लिए योग बतलाने के लिए यह उपक्रम है – आद्य अक्षर के रूप में निरन्तर नाभि देश में स्थित भगवती नैरात्म्य ही विचित्र तेजयुक्त होने से 'चण्डाली' कही जाती है। 'ज्वलिता' का अर्थ रागरूप वह्नि से जलन है। 'दहति' का अर्थ तपाने से है। पाँच तथागत हैं – वैरोचन, अक्षोभ्य, रत्नकेतु, अभितायु एवं अमोघसिद्धि। लोचनादि देवियाँ हैं – लोचना, मामकी, पाण्डरा और तारा। यह कैसे जलाति है? दशों दिशाओं से अपने हृदयगत बीजों से आकृष्ट करके महासुखचक्र में रखकर जलते हुए चण्डाली के किरणों से उनको तपाना ही जलाना है। तपाने से ही 'हं' कार रूप चन्द्र (अधोमुख होने से) से अमृतरस बहने लगता है और नीचे शरीर तक उतर जाता है। वह महासुख चक्र में एकत्रित होकर ज्ञानरूप में परिणत होता है।

वज्रकुल पटल क्या है?

इस परिच्छेद का नाम सर्वतथागत काय-वाक्चित्त हेवज्र कुल पटल है। यहाँ सहज महाज्ञानरूप हेवज्र ही वज्र है। उसका कुल अर्थात् घर ही उसका देह है, अर्थात् योगियों का अपना देह है, उसमें ही जो भावना की जाती है वही वज्रकुल का अवलम्बन है इसी से उसे वज्रकुल कहा गया है। उसका द्योतक जो पटल है वह वज्रकुल पटल है, क्योंकि प्रधानरूप से उसी का वर्णन यहाँ किया गया है।

यह प्रथम वज्रकुल पटल पूर्ण हुआ।

द्वितीयः मन्त्र पटल

मन्त्रपटलं व्याख्यास्यामः - सार्वभौतिकबलिमन्त्रः - ओं अकारो मुखं सर्वधर्माणामाद्यनुत्पन्नत्वात् - ओं आः हूँ फट् स्वाहा ॥ १ ॥

मन्त्र पटल की व्याख्या करते हैं - सभी देवताओं को बलि-पूजा करने के लिए यह मन्त्र है - ऊँ, अकार मुख है क्योंकि सभी धर्म पहले अनुत्पन्न अर्थात् उत्पन्न नहीं थे। मन्त्र ये हैं - ऊँ, आः, हूँ, फट् स्वाहा।

तत्त्वार्थ का मनन और जगत् की रक्षा के कारण ही मन्त्र कहा गया है - समाधि से उत्पन्न बोधिचित्त ही वह है। मन्त्रों के उत्पन्न होने से उसका द्योतक यह मन्त्रपटल कहलाता है। समीभूत का अर्थ है - इन्द्रादि सपरिवार ही सभीभूत हैं वे ही देवता जिसके हैं वही सार्वभौतिक है। देवताओं को पदार्थ चढ़ाना ही बलि है, उसको अर्पण किये जाने वाले ये ही मन्त्र हैं। परिष्कृत किए गए पूज्य-पूजक और पूजा ही सर्वधर्म है। प्रारंम्भ से ही अनुत्पन्न और ग्राह्य-ग्राहक स्वभाव द्वारा नित्य अनुत्पन्न होने से नित्य हैं।

तथागतानां बीजम् - बुं अं ज्रीं खं हूं ॥ २ ॥

तथागतों के बीज हैं - बुं, अं, ज्रीं, खं, हूँ ।

यहाँ पर तथागत हैं वैरोचन, रत्नेश, अमिताभ, अमोघसिद्धि एवं अक्षोभ्य। वे मन्त्र भी क्रमशः इनके साथ ही संपृक्त हैं। इसमें विशेष करके 'हूँ' कार काय वाक् और चित्त को समाहित करते हुए त्रिवज्र के रूप में अवस्थित है, जो अभेद्य कहा जाता है।

हेवज्रस्य हृदयम् - ओं देव पिचुवज्र हूं हूं हूं फट् स्वाहा ॥ ३ ॥

हेवज्र का हृदय रूप मन्त्र यह है - उँ देव पिचु वज्र हूँ हूँ हूँ फट् स्वाहा ।

'देव' का अर्थ है - सभी वशिता शक्तिओं के साथ क्रीड़ा करने के कारण ही देव है। 'दिवु क्रीडा' धातु से 'देव' शब्द निष्पन्न हुआ है। 'पिचु' - उत्कृष्ट वस्त्र है। और स्वयं वज्र के समान होने से 'पिचु वज्र' कहा गया है। दुष्टों का निग्रह करने से भी पिचु वज्र प्रसिद्ध है।

सर्वमन्त्रपदाः – ओंकारादि स्वाहान्ता हूं फट्कार विदर्भिताः ॥ ४ ॥

अनुवाद

सभी मन्त्र पद ये हैं – ऊँ कार से लेकर स्वाहा शब्द पर्यन्त 'हूँ फट्' ये शब्द मध्य में रखकर ही इसका प्रयोग किया जाता है।

व्याख्या

ये मन्त्र पद हेवज्र के ही हैं। 'ऊँ हूँ फट् स्वाहा' इस प्रकार उसका प्रयोग किया जाता है। 'हूँ' कार दुष्टों को डरवाने के लिए और 'फट्' दुष्टों को मारने के लिए प्रयुक्त है। अन्तिम में स्वाहा शब्द इन पदों के सम्मानार्थ प्रयुक्त है।

पुरक्षोभमन्त्रः – ओं अ क च ट त प य श स्वाहा ॥ ५ ॥

अनुवाद

'पुर' नगर आदि को क्षुभित करने के लिए हेवज्र का यह मन्त्र है – ऊँ अ क च ट त प य श स्वाहा।

व्याख्या

आठ वर्गों के ये सभी अक्षर आद्य अक्षर हैं।

योगिनीनां बीजम् – अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ॥ ६ ॥

अनुवाद

योगिनियों का बीजमन्त्र है – अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ।

व्याख्या

यहाँ योगिनियाँ हैं – नैरात्म्या, वज्रा, आभ्यन्तरगौरी, वारियोगिनी, वज्रडाकी, प्रक्कसी, शवरी, चण्डाली, डोम्बी, बाह्यगौरी, चौरी, वेताली, घस्मरी, भूचरी और खेचरी।

द्विभुजस्य – ओं त्रैलोक्याक्षेप हूं हूं हूं फट् स्वाहा ॥ ७ ॥

अनुवाद

हेवज्र का मन्त्र है – ऊँ त्रैलोक्याक्षेप हूँ हूँ हूँ फट् स्वाहा।

व्याख्या

यहाँ द्विभुज-हेवज्र है। ब्रह्मा, विष्णु रुद्र आदि त्रिलोक हैं उनके अधिपति हेवज्र हैं। उनमें से वे प्रधान भी हैं।

चतुर्भुजस्य - ओं ज्वल ज्वलभ्यो हूं हूं हूं फट् स्वाहा ॥ ८ ॥

अनुवाद

चतुर्भुज का मन्त्र है - ॐ ज्वल ज्वलभ्यो हूँ हूँ हूँ फट् स्वाहा ।

व्याख्या

चार हाथों वाला देवता यहाँ भी हेवज्र ही हैं।

षड्भुजस्य - ओं किटि किटि वज्र हूं हूं हूं फट् स्वाहा ॥ ९ ॥

अनुवाद

६ भुजाओं का मन्त्र है - ॐ किटि किटि वज्र हूँ हूँ हूँ फट् स्वाहा।

व्याख्या

किट-किट का अर्थ है गति, गमन और प्राप्ति। किटि-किटि = शरणगमन। वे सारे प्राणी जिसमें शरणागत होते हैं वही किटि किटि है। सभी दुष्टों का विनाश करने के कारण किटि किटि वज्र है।

कायवाक्चित्ताधिष्ठानमन्त्रः - ओं आः हूं ॥ १० ॥

अनुवाद

काय-वाक् चित्तों का अधिष्ठान मन्त्र यह है - ॐ आः हूँ।

व्याख्या

काय वाक् एवं चित्तों का मूल मन्त्र यही है जिससे वे तीन सदा आप्लावित रहते हैं। वे इन्हीं तीन मन्त्रों से ही उत्पन्न भी हुए हैं।

भूमिशोधनमन्त्रः - ओं रक्ष रक्ष हूं हूं हूं फट् स्वाहा ॥ ११ ॥

अनुवाद

भूमि शोधन मन्त्र यह है - ॐ रक्ष रक्ष हूँ हूँ हूँ फट् स्वाहा।

व्याख्या

भूमि में जब मण्डल निर्माण किया जाता है तब उसका परिष्कार किया जाता है जिसे यहाँ 'शोधन' शब्द से अभिहित किया गया है। उस अवसर पर इसी मन्त्र का प्रयोग होता है।

स्तम्भनं - ओं हूं स्वाहा ॥ १२ ॥

अनुवाद

स्तम्भन के लिए यह मन्त्र है - ॐ हूँ स्वाहा।

व्याख्या

इस मन्त्र के द्वारा किसी भी प्राणी का स्तम्भन (अर्थात् धारण, रोकना, जैसा है वैसा ही रखना आदि) किया जाता है।

वश्यम् - ओं अं स्वाहा ॥१३॥

अनुवाद

वशिता के लिए मन्त्र है - ॐ अं स्वाहा।

उच्चाटनम् - ओं खं स्वाहा ॥१४॥

अनुवाद

उच्चाटन के लिए मन्त्र है - ॐ खं स्वाहा।

विद्वेषणम् - ओं ग्रीं स्वाहा ॥१५॥

अनुवाद

विद्वेष के लिए मन्त्र है - ॐ ग्रीं स्वाहा।

अभिचारूकम् - ओं बुं स्वाहा ॥१६॥

अनुवाद

अभिचार के लिए मन्त्र है - ॐ बुं स्वाहा।

आकर्षणम् - ओं हूं स्वाहा ॥१७॥

अनुवाद

आकर्षण के लिए मन्त्र है - ॐ हूँ स्वाहा।

मारणम् - ओं घुः स्वाहा ॥१८॥

अनुवाद

मारण के लिए मन्त्र है - ॐ घुः स्वाहा।

ओं कुरुकुल्ले ह्रीः स्वाहा ॥१९॥

अनुवाद

वशीकरण के लिए मन्त्र है - ॐ कुरुकुल्ले ह्री स्वाहा।

व्याख्या

कुरुकुल्ला का अर्थ है भगवती तारा। विशेष रूप से वशीकरण के लिए यह मन्त्र प्रयुक्त होता है। यहाँ ऊपर बतलाये गये सभी मन्त्रों का प्रयोग जप, होम, मन्त्र, तन्त्र आदि प्रयोगों के अवसर पर किया जाना चाहिए। इनका प्रयोग करने की विधि विशेष रूप से श्रीसमाज, श्रीवज्रडाकिनी आदि ग्रन्थों में दी गई है। वहीं से जानना चाहिए। इनका जप भी फल प्रदान करने के लिए पर्याप्त है।

ओं आः फुः कारम् अनन्तप्रतिकृतिं कृत्वा पञ्चामृतेन स्नापयेत्। कृष्णपुष्पेणार्चयेत्। नाग दमनकरसेन लेपयेत्। हस्तिमदेन शिरो लेपयेत। शरावद्वयेन संपुटीकृत्य स्थापयेत्। कृष्णगोक्षीरेण पूरयेत्। कृष्णकुमारीकतितसूत्रेण

वेष्टयेत्। वायव्यां दिशि पुष्करिणीं कृत्वा तमनन्तं स्थापयेत्।

यदि न वर्षन्ति तदा एतन्मन्त्रं विपरीतं जपेत् । वर्षन्ति। यदि न वर्षन्ति तदा मूर्धा स्फुटति अर्जकस्येव मञ्जरी। वर्षायन् (वर्षापण) विधिः।

अनुवाद

ॐ आः फुः इन दो अक्षरात्मक मन्त्रों को मन से लिखकर उसके परिणामात्मक मिट्टी का अनन्त नामक नागराज की मूर्ति बनाकर पञ्चामृत से उस मूर्ति को स्नान करायें। काले फूलों से उसकी पूजा करें। काली मिट्टी का उसपर लेपन करें। हाथि निवास स्थान के मिट्टी को उसके शिर पर लेपन करें। मिट्टी के शरावों को वहाँ पर रख दें। उन बर्तनों में काली गाय का दूध भर कर रख दें। काली कुमारी के हाथों से बनाए गए रूई के डोरों से उसका वेष्टन करें। वायव्य दिशा में एक तालाब बनवाकर उसमें उस अनन्त नागराज की मूर्ति की स्थापना करें। उस पुष्करिणी के तट पर मण्डल बनाना चाहिए। काली मिट्टी-धूलकण, वह भी शमशान के काले अङ्गारों से, मनुष्यों के हड्डियों के सफेद धूल से, हरण (हरितकी) के धूल से पीलाधूल, श्मशान के ईटों से हरित, चौर्य पत्ते और मनुष्य के हड्डियों के चूर्णों से नील रज एवं श्मशान के अन्य पदार्थों के चूर्णों से मण्डल बनाकर श्मशान के सूत्र (डोर) द्वारा तीन हाथ तीन अंगुल बराबर मण्डल का निर्माण करना चाहिए। उसके बीचों बीच दूसरे किसी से न ढके इस प्रकार 'हेवज्र' का चित्र लिखना चाहिए। उसके मुख आठ होंगे, चार पैर, १६ हाथ होंगे, २४ नेत्र होंगे इतने भयङ्कर होंगे की भय भी इनसे भयभीत होगा। इसके बाद एकान्त में रहकर अत्यन्त एकाग्र होकर क्रूर दृष्टि से युक्त होकर आचार्य द्वारा मन्त्र का जाप करना चाहिए - मन्त्र है - ॐ घुरु, घुरु, घुडु घुडु मस मस घट घट घोटय घोटय। अनन्त नामक नागाधिराज, जो क्षोभ उत्पन्न करने में समर्थ है, आप कृपया हे हे रु रु क ! सप्त पाताल में गए हुए नागों को आकर्षित करें, पानी की वर्षा करें, बादलों में गर्जन उत्पन्न करें - फुः फुः फुः फुः फुः फुः फुः फुः हूँ हूँ हूँ फट् स्वाहा।

इन मन्त्र के प्रयोग करने पर भी वर्षा न हुई तो इसी मन्त्र को उल्टा करके जपना चाहिए। [विपरीत मन्त्र में 'स्वाहा फट् हूँ यावद् घुडु घुडु घुरु घुरु ॐ अर्जकः पर्णाशः' ऐसा करना चाहिए] इस पर भी वर्षा न होगी तो मूर्धाओं का विस्फोट होगा। जैसे अर्जक पेड़ की मञ्जरियाँ फट जाती हैं। यही वर्षा की विधि नियम है।

मेघानां स्फाटनं वक्ष्ये। श्मशानकर्पट उपविश्य मन्त्रजपेन स्फाटयेत्। ओं आर्यश्मशानप्रियाय हूं हूं हूं फट् स्वाहा। मेघस्फाटनविधिः ॥ २१ ॥

अनुवाद

[अब यहाँ] मैं मेघों को फटाने की विधि बताता हूँ। श्मशान के कपड़े (मूर्दे के कफन) में बैठकर मन्त्र का जप करके मेघों को फटाना चाहिए। मन्त्र इस प्रकार है - 'ॐ

आर्य श्मशान प्रियाय = श्मशान जिसको अतिशय प्रिय है ऐसे आर्य को हूँ हूँ फट् स्वाहा' यही मेघों को वर्षा कराने की विधि है।

परसैन्यविनाशाय खटिकासाधनं वक्ष्ये। खटिकां पिष्ट्वा पञ्चामृतेन कुछारच्छिन्नया सार्धं वटिकां कारयेत्। मन्त्रः - ओं वज्रकर्तरि हेवज्राय हूं हूं हूं फट्। सिद्धयर्थं कोटिं जपेत्। पूर्वसेवां लक्षं जपेत्। तां साध्य कमण्डलुग्रीवां वेष्टयेत्। वेष्टयित्वा भञ्जयेत्। सर्वे शत्रवः शिरोहीना भवन्ति। वज्रकर्तरिविधिः ॥ २२ ॥

अनुवाद

शत्रुओं की सेना को विनाश के लिए 'खटिका साधन' के विषय में बताता हूँ। शीशे को पिसकर पञ्चामृत के साथ गडासे से कटे हुए पत्ते में बरी बनावें। मन्त्र का जाप करें - मन्त्र है ऊँ वज्रकर्तरि हेवज्राय हूँ हूँ हूँ फट्। इस मन्त्र के सिद्धि के लिए एक करोड़ जपें। मन्त्र शुद्धि के लिए एक लाख जप करें। उस बरी को सिद्ध करके कमण्डल के गले में वेष्टित करें। उसमें लपेटने के बाद उसे फोड़ें। सभी शत्रु मर जायेंगे। शिर विहीन हो जायेंगे। यही वज्र काटने की विधि है।

देवान् स्फाटयितुकामेन तिलकं साधनीयम्। ब्रह्मबीजं पुष्यसाधितं कुठारच्छिन्नामिश्रितं सूर्यग्रासे अक्षोभ्येन पिषयेत्। पिष्टवा परशुं संस्करेत्। तं पादेनाक्रम्य मन्त्रं जपेत्।

ओं वज्रकुठार पाटय पाटय हूं हूं हूं फट् स्वाहा। कोटिं जप्य तिलकं वन्दयेत्। यं च लगति स स्फुटति। देवतास्फाटनविधिः ॥ २३ ॥

अनुवाद

देवताओं के फटाने की कामना से 'तिलक' बनाना चाहिए। पलाश के बीजों को पुष्यनक्षत्र में सिद्ध करके कुठार (कुल्हाड़ी) द्वारा कटे हुए आँक के 'चोप' रस से मिला कर अक्षोभ्य के साथ मिला दें और उसे पीस कर कुल्हाड़ी का संस्कार करें। पैर से कुचलकर मन्त्र का जाप करें।

मन्त्र यह है - ऊँ वज्र कुठार! पाटय पाटय हूँ हूँ हूँ फट् स्वाहा। एक करोड़ जाप करके तिलक बनायें, जिसे लगायेंगे वह फुट जायेगा। यही देवता स्फाटन फटाने की, आकर्षित करने की विधि है।

तापज्वरं कर्तुकामेन अर्कदले विषराजिकार (ल) वणचित्रकरसेन शत्रोर्नाम लिखेत्। तुषाग्नौ निक्षिपेत्। मन्त्रमयुतं जपेत्।

ओं हेवज्र ज्वल ज्वल शत्रून् भ्रूं हूं हूं हूं फट् स्वाहा। अयुतजापेन सिध्यति ॥ २४ ॥

अनुवाद

भयंकर ज्वर उत्पन्न करने के लिए आँक के फूल में सर्प के छाल (काँचुली) को पिसकर नमक के रस के साथ मिलाकर शत्रु का नाम लिखें। उसे भूषा के आग में डाल दें। १० करोड़ जाप करें।

मन्त्र यह है – ॐ हेवज्र ज्वल ज्वल शूत्रून् भ्रूँ हूँ हूँ हूँ फट् स्वाहा। १० करोड़ जपने से सिद्ध होता है।

मद्यमुद्गिरितुकामेन साध्यस्य नाभौ मंकारं भावयेत् । मंकारनिष्पन्नं मद्योदरं विभावयेत् । वान्तिं कुर्वन् दृश्यते। मद्यमुद्गिरति ॥ २५ ॥

अनुवाद

जिसे मद्य उगलवाने की चाह तो उसकी नाभि में 'मं' इसका जाप करना चाहिए। 'मं' कार से निकले हुए मद्य का ध्यान करे। उसके बाद उल्टी करते हुए दिखेगा। मद्य की उल्टी होगी ।

प्रमदां वशीकर्तुकामेन अशोकाष्टम्याम् अशोकतलं गत्वा रक्तवस्त्रं परिधाय मदनफलं भक्षयेत्। कामाचिकारसेन तिलकं वन्द्य मन्त्रं जपेत्। ओं ह्रीः अमुकी मे वशीभवतु स्वाहा। अयुतजापेनागच्छति ॥ २६ ॥

अनुवाद

जिसे स्त्री को वश करने की इच्छा हो अशोक अष्टमी में अशोक वृक्ष के नीचे बैठकर, लाल वस्त्र पहन कर आम खाना चाहिए। आम्र वृक्ष से निकले हुए रस से ललाट में तिलक करना चाहिए। मन्त्र यह है – ॐ ह्रीः अमुकी (उसका नाम) मेरे वश में हो जाय स्वाहा। १० लाख जपने से वह आ जाती है।

चन्द्रसूर्यौ वशीकर्तुकामेन शालिपिष्टकमयं चन्द्रार्कं कृत्वा वज्रोदके निक्षिपेत्। मन्त्रं जपेत्। ओं चन्द्रार्क मा चल मा चल तिष्ठ तिष्ठ हेवज्राय हूं हूं हूं फट् स्वाहा। सप्तकोटिं जपेत्। तिष्ठते। चन्द्रसूर्यं रात्रिं दिवाविशेषकं भवति। इति चन्द्रसूर्यविधारणविधिः ॥ २७ ॥

अनुवाद

चन्द्र और सूर्य को वश करने के लिए चावल के आँटे का चन्द्र और सूर्य के मूर्ति बनाकर वज्र के (हीरा) पानी में डाल दें। मन्त्र का जप करें। मन्त्र यह है – ॐ (चन्द्र सूर्य)

चन्द्र अर्क मा चल मा चल (न चलो न चलो) (रुको रुको) तिष्ठ तिष्ठ हेवज्राय (हे वज्र के लिए) स्वाहा। सात करोड़ जप करें। खड़े हो जाते हैं। चन्द्र और सूर्य रात दिन खड़े हो जायेंगे। यह चन्द्र सूर्य स्तम्भन विधि है।

ओं नग्रा नग्रा। इत्यनेन मन्त्रेण विकालवेलायां कुमार्यार्थसाधनार्थं चक्षुष्यष्टोत्तरशतेनाभिमन्त्र्य पुष्पधूपदीपानां पञ्चोपचारेण संपूज्य निमन्त्रयेत्। चतुर्दश्यामष्टम्यां वा प्रभातकाले कलशादिकं संस्थाप्य तैलमलक्तकरसं चानेनैव मन्त्रेणाष्टोत्तरशतवारानभिमन्त्रयेत्। पश्चादभिमन्त्रितालक्तकरसेन मन्त्रिणो वृद्धाङ्गुष्ठं म्रक्षयित्वा तैलेनापि स्नाप्य कुमार्यान् दर्शयेत्। वद केन मम द्रव्यम् अपहृतमिति। तत्र स कथयति । अमुकेनेति। वज्रज्योतिषो नष्टद्रव्यान्वेषणविधिः ॥ २८ ॥

अनुवाद

'ऊँ नग्रा नग्रा' इन मन्त्र से [त्रयोदशी या सप्तमी तिथि में] विकाल वेला में = रात्रि काल में कुमारियों के द्वारा नष्ट पदार्थ (चोरी खोना आदि) के प्राप्ति के लिए आँख में १०८ बार मन्त्र में अभिमन्त्रित करके पुष्प, धूप, दीप आदि पञ्चोपचार द्वारा पूजा करके निमन्त्रित करें। चतुर्दशी या अष्टमी तिथि को प्रातःकाल कलश (दीप) आदि स्थापना करके तेल और अलक्त रस को इसी मन्त्र से १०८ बार अभिमन्त्रित करे। इसके बाद में अभिमन्त्रित अलक्त रस द्वारा मन्त्र जपने वाले का अंगूठा उसमें भिगोकर (डुबाकर) तेल में भी भिगोकर कुमारियों को दिखावें। बोलो किसने मेरे द्रव्य का अपहरण किया। उसके बाद वह बोलता है। इस व्यक्ति ने किया। यही वज्र ज्योतिष का खोये हुए पदार्थ का अन्वेषण विधि है।

ओं वेडुया वेडुया इत्युक्ते हस्ती पलायते ॥ २६ ॥

अनुवाद

'ऊँ वेडुया वेडुया' ऐसा कहने से हाथी भाग जाता है।

ओं मर्मा मर्मा इत्युक्ते व्याघ्रः पलायते ॥ ३० ॥

अनुवाद

'ऊँ मर्मा मर्मा' कहने वे बाघ भाग जाता है।

ओं तेलिया तेलिया इत्युक्ते गण्डा पलायते ॥ ३१ ॥

अनुवाद

'ऊँ तेलिया तेलिया' कहने से गैंडा भाग जाता है।

इलि मिलि फुः फुः इत्युक्ते सर्पः पलायते ॥ ३२ ॥

अनुवाद

'इलि मिलि फुः फुः' ऐसा कहने से साँप भागता है।

धनपाल वैनेयहस्तेन हस्तं दर्शयेत् श्वा पलायते ॥ ३३ ॥

अनुवाद

धनपाल [कुवेर] गरुड के हाथ से हाथ दिखाने से कुत्ता भाग जाता है ।

वज्रा गौरी च वारी च वज्रडाकी नैरात्मिका ।
भूचरी खेचरी योगात् स्तम्भनादि करेद् व्रती ॥ ३४ ॥

अनुवाद

वज्रा, गौरी, वारी, वज्रडाकी, नैरात्म्या, भूचरी, खेचरी के सहयोग से व्रत करने वाला स्तम्भन करें ।

मन्त्रपटल पूर्ण हुआ।

देवतापटलस्तृतीयः

देवता पटलं व्याख्यास्यामः
प्रथमं भावयेन्मैत्रीं द्वितीये करुणां तथा ।
तृतीये भावयेन् मोदं उपेक्षां सर्वशेषतः ॥ १ ॥

अब यहाँ देवता पटल की व्याख्या करते हैं – सर्वप्रथम साधक को मैत्री की भावना करनी चाहिए। दूसरे क्षण में करुणा की भावना, तृतीय क्षण में आनन्द की भावना और अन्तिम में सभी प्रकार की उपेक्षा भावना करनी चाहिए।

इसे देवतापटल कहा गया है। यहाँ देवता हे वज्र और वज्र योगिनियाँ हैं। उन्हीं का पटल होने से देवतापटल कहा गया है। क्योंकि यहाँ उत्पत्ति क्रमानुसार वाद में विस्तारपूर्वक कहे जाने वालों का ही व्याख्यान किया गया है। यहाँ साधक को सर्वप्रथम उपयुक्त स्थानों का निर्धारण करने के बाद देवग्रह अर्थात् मन्दिर में प्रवेश करके सुखासन में बैठकर भगवान् की मूर्ति को आगे रखकर उसकी पूजा के बाद, रीड को सीधा करके स्मृति में अवस्थित होकर पापदेशना, पुण्यानुमोदना और त्रिशरण गमन करके बोधिचित्त में स्थित होकर प्रथम क्षण में मैत्री अर्थात् सभी प्राणियों के प्रति मित्रता का भाव और क्रमशः द्वितीय आदि क्षणों में करुणा आदि भाव करना चाहिए ।

तस्मात् पुनरपि
प्रथमं शून्यताबोधिं द्वितीयं बीजसंग्रहम् ।
तृतीयं बिम्बनिष्पत्तिं चतुर्थं न्यासमक्षरम् ॥ २ ॥

उसके बाद फिर भी [इस प्रकार भावना करनी चाहिए –] प्रथम क्षण में शून्यता बोधि की भावना करनी चाहिए, द्वितीय क्षण में बीजों का संग्रह करना चाहिए, तृतीय क्षण में बिम्बनिष्पत्ति की भावना और चतुर्थ क्षण में अक्षर न्यास की भावना करनी चाहिए।

शून्यता बोधि का अर्थ हे ग्राह्य ग्राहक भ्रान्ति रहित शून्यता, वही विज्ञप्तिमात्र भी है। वही तत्त्व अभ्रान्त अनन्त और अक्षय भी है। बीज संग्रह का तात्पर्य है – उसी शून्यता को अपने हृदय में रखकर बालसूर्य जैसा मण्डलाकार रूप में ध्यान करते हुए, आलीबीज

(अक्षर) का ध्यान में रखकर उस बीज से ही वज्रगौरी आदि का प्रादुर्भाव का चिन्तन करके उसी बीज में संहृत करना ही बीजसंग्रह है। बिम्ब निष्पत्ति - उसी बीज मन्त्र से हेवज्ररूप अपने देह का बड़े कमल के नाल में अवस्थित सूर्य जैसे तेज से आप्लावित सूर्य प्रभा मण्डल की निष्पत्ति की भावना करना ही बिम्ब निष्पत्ति है। 'न्यासमक्षरम्' का अर्थ है - उसके बाद सूर्यमण्डल को देखकर उसके ऊपर बीजाक्षर को रखना है। उसके बाद अपने देवता को उसी चित्त में भावना करना भी है।

रेफेन सूर्यं पुरतो विभाव्य तस्मिन्नाभौ हूं-भव विश्ववज्रम् ।
तेनैव वज्रेण विभावयेच्च प्राकारकं पञ्जरबन्धनं च ॥ ३ ॥

(उसके बाद) अपने आगे ही अग्निवर्णात्मक रेफ के द्वारा सूर्य मण्डल का ध्यान करके उसके बीच में विश्व वज्र रूप 'हूँ' का ध्यान करना चाहिए। साथ ही उसे सूक्ष्म किरण रूप वज्र के द्वारा चारों ओर बिखरे हुए तेजमण्डल का भी ध्यान करना चाहिए। ऊपर की ओर गए हुए तेज रश्मियाँ ही पञ्जर बन्धन हैं उसका भी ध्यान करना चाहिए। साथ ही चारों ओर फैले हुए एवं भूमि की ओर गए हुए किरणों का भी ध्यान करना चाहिए।

प्रथमं भावयेन्मृतकं धर्मधात्वात्मकं विदुः ।
योगी तस्योपरि स्थित्वा हेरुकत्वं विभावयेत् ॥ ४ ॥

यहाँ सबसे पहले 'मृतक' का ध्यान करना चाहिए। उसके बाद धर्मधातु का आलम्बन करना चाहिए। योगी को उसके ऊपर अपने आप को अवस्थित करते हुए भगवान् हेरुक का ध्यान करना चाहिए।

यहाँ पर 'मृतक' का अर्थ है - वज्रमय -पृथ्वी - से उद्भुत विस्तीर्ण अष्ट दल कमल तन्तु के बीच में स्थित शव ही मृतक है। निरात्मक होने से मृतक शव है। धर्मधातु का आलम्बन ही बोधिचित्त है। बोधिचित्त स्वभाव वाले भगवान् हैं। इसी से यह भगवान् का भी आधार कहलाता है।

ततः स्वहृदि भावयेद्रेफं तद्भवं सूर्यमण्डलम् ।
तत्रैव हूं-कृतिं चैव प्रज्ञोपायस्वभावकम् ॥ ५ ॥

उसके बाद - अपने हृदय में अग्निवर्णरूप रेफ का ध्यान करें, और उससे निर्गत सूर्य आदि का भी ध्यान करना चाहिए। उसके मध्य में 'हूँ' कार का ध्यान करें जो 'हूँ' कार प्रज्ञा एवं उपाय स्वभावात्मक है।

प्रज्ञा एवं उपाय से शून्यता करुणात्मक है जो बोधिचित्त से अभिन्न है।

कृष्णवर्णं महाघोरं हूं-कारं वज्रसंभवम् ।
वज्रवरटकमध्यस्थं हूं-तत्त्वं विभावयेत् ॥ ६ ॥

'हूँ' कार वज्र से उत्पन्न हुआ है और वह भयंकर एवं काले वर्णवाला है। फिर वह वज्र के मध्य में स्थित है उसीका ध्यान करना चाहिए।

वज्रवरटक : वज्र के मध्य में स्थित गोलक ही वरटक है। वही वज्रवरटक कहलाता है ।

पुनः

हूं-कारपरिणतं दृष्ट्वा द्वेषात्मकं विभावयेत् ।
वज्रजन्ममहाकृष्णं नीलपङ्कजसन्निभम् ।

अथवा

नीलारुणाभं च भावयेच्छन्दया खलु ॥ ७ ॥

फिर 'हूँ' कार के परिणाम को देखते हुए द्वेषात्मक भगवान् हेवज्र का ध्यान करना चाहिए जो महाकृष्ण रूप एवं नीले कमल जैसा दिखते हैं अथवा नील एवं अरुण रंग मिश्रित वर्ण के हैं उन का ही श्रद्धापूर्वक भावना या ध्यान करना चाहिए ।

द्वेषात्मक हैं वे क्योंकि दुष्टों के नाश के लिए कृत्रिम रूप में क्रोधित दिखते हैं। नील अरुण का अर्थ है महाकरुणा रूप राग से युक्त।

व्योम्नि भट्टारकं दृष्ट्वा वज्रजन्ममहाकृपम् ।
पूजयेदष्टदेवीभिः सर्वालङ्कार-धारिभिः ॥ ८ ॥
चौरी मृगलाञ्छनधर्त्री गौरी मार्तण्डभाजनम् ।
वेताली वारिहस्ता च भैषज्यधर्त्री घस्मरी ॥ ९ ॥
पुक्कसी वज्रहस्ता च शवरी रसधरी तथा ।
चण्डाली डमरुं वाद्य एताभिः पूज्यते प्रभुः ।
डोम्ब्यालिङ्गितकन्धरो महारागानुरागितः ॥ १० ॥

आकाश में वज्रमण्डल के अधिष्ठाता भगवान् का साक्षात्कार करने के बाद समग्र अलंकारों के द्वारा समग्र देवियों के द्वारा अलंकार सामग्री से विभूषित भगवान् की पूजा करना चाहिए। (वे देवियाँ है) - चौरी चन्द्रमा को धारण करने वाली, गौरी सूर्य पात्र युक्ता, वेताली पानी हाथ में रखने वाली, औषधी हाथ में धारण करने वाली घस्मरी, पुक्कसी, वज्रहता, शवरी, रसधरी, चण्डाली नामक देवियों द्वारा डमरु आदि वाद्यों के साथ भगवान् की पूजा की जाती है और वे भगवान् डोम्बी के द्वारा आलिङ्गित हैं साथ ही महान् अनुराग से आप्लावित भी हैं।

चन्द्रालिकालिमार्तण्डं बीजं मध्यगतं भवेत् ।
एव सत्त्व इत्याहुः परमानन्दस्वभावकः ॥११ ॥

वह योग शरीर पाँच पदार्थों से युक्त हैं – जैसा कि आलि, कालि एवं अकार आदि १५ स्वर से युक्त, पंक्तिमण्डली को देखकर किरण के मालाओं से सुसज्जित शब हृदय को शरद् का तीन चन्द्र में परिणत होते हुए देखना चाहिए। उस बीच में वह बीज है। वही सत्त्व है। और वह परम आनन्द स्वभाव वाला भी है ।

विस्फुरन्ति स्वदेहाभाः गगनमण्डलच्छादकाः ।
संहार्यानयेद् हृदये योगी द्वेषात्मको भवेत् ॥१२ ॥

उस योगी के शरीर से पूरे आकाश मण्डल को आच्छादित करने वाले तेज किरणें निकलने लगती हैं। उन तेज किरणों का अपने ही हृदय में संहृत (आकर्षण) करके योगी को द्वेषात्मक अर्थात् चन्द्रसूर्य वज्रबीज के परिणाम द्वारा हेवज्र रूप होना चाहिए।

नीलारुणाभवर्णेन रक्तबन्धुकनेत्रवान् ।
पिङ्गोर्ध्वकेशवर्तश्च पञ्चमुद्रेणालङ्कृतः ॥१३ ॥

नीले अरुण वर्ण से युक्त, रक्त वर्ण युक्त नेत्र, पीले ऊर्ध्व केशराशि एवं पाँच मुद्राओं से युक्त भगवान् हेवज्र हैं, उनका ही ध्यान करना चाहिए।

चक्री कुण्डल कण्ठी च हस्ते रुचकमेखला ।
पञ्चबुद्धविशुद्धया च एता मुद्राः प्रकीर्तिताः ॥१४ ॥
क्रुद्धदृष्टिर्व्याघ्रचर्मा स द्विरष्टवर्षाकृतिः ।
वामे वज्रकपालं च खट्वाङ्गं चापि वामतः ॥
दक्षिणे कृष्णवज्रं च हूं-कारोच्चारणात्मकः ॥१५ ॥

वे चक्र, कुण्डल, माला धारण करते हैं साथ ही हाथों में सुन्दर मेखला भी धारण करते हैं। पाँच विशुद्धता से युक्त पाँच मुद्राओं को भी धारण करते हैं। उन्हें ही मुद्रा भी कहा गया है। दृष्टि क्रोधयुक्त दिखती है, साथ ही व्याघ्रचर्म से सुशोभित एवं १६ वर्ष के दिखते हैं। वाम हस्त में वज्र कपाल है, वामहस्त में ही खटिया का कोई एक अंग भी रखते हैं। दक्षिण भाग में कृष्ण वज्र है जो हूँ कार (वज्र का उच्चारण) शब्द से आप्लावित होता है।

श्मशाने क्रीडते नाथोऽष्टयोगिनीभिः परिवृतः ।
श्वसतीत्यनया युक्त्या श्मशानेत्यभिधीयते ॥१६ ॥

वे भगवान् हे वज्र प्रायः श्मशान में ही रहा करते हैं। आठ योगिनियों से परिवृत होते हैं। शव के साथ हाने से ही इन्हें श्मशानवासी कहा गया है। नैरात्म्यकता ही शव है इसी से वे श्मशानवासी कहलाते हैं।

चतुर्भुजश्चतुर्मारनिर्जितविशुद्धितः। पूर्वोक्तवर्णरूपो हूं-भवः प्रथमवामभुजे नरकपालं देवासुराणां रक्तेन पूरितं प्रथमदक्षिणभुजे वज्रं शेषद्विभुजाभ्यां प्रज्ञालिङ्गितः। वज्रवाराही प्रज्ञा भगवद्रूपिणी ॥ १७ ॥

भगवान् हेवज्र चार हाथों से युक्त हैं। चार प्रकार के कामों से विमुक्त हैं। पूर्वोक्त वर्ण हूँ स्वरूप भी हैं। प्रथम वामहस्त में मनुष्यों के शिरों को साथ ही देवता एवं असुरों के रक्तों से पूरित दिखते हैं। पहले दायें हाथ में वज्र है और अन्य दोनों हाथों में प्रज्ञा एवं उपाय मुद्राओं को धारण करते हैं। वज्रवाराही ही प्रज्ञा है वह भगवान् रूपिणी है।

षड्भुजस्त्रिमुखो वामं रक्तं दक्षिणं चन्द्रारुणाभं प्रथमं नीलम्। नग्नोः (ग्नः) पूर्वोक्तवर्णरूपो भुजानां षट्पारमिता-विशुद्धिः। प्रथमवामभुजे त्रिशूलं प्रथमदक्षिणभुजे वज्रं वामद्वितीयभुजे घण्टा दक्षिणद्वितीयभुजे कर्तिः। शेषद्विभुजाभ्यां वज्रश्रृंङ्खला-समापन्नः। यद्वद्भगवान् तद्वत् प्रज्ञा। सव्यापसव्ये कर्तृकपालम्। त्रैधातुकात्मकमृतकाक्रान्तः ॥ १८ ॥

छह हाथ हैं तीन मुख हैं। उनमें वाम रक्त है, दक्षिण श्वेत-अरुण वर्ण का है। पहला नील है। वे नग्न रूप में रहते हैं। पहले कहे हुए हाथों का वर्ण षट्पारमिता के शुद्धि को दिखलाने के लिए है। प्रथम वाम हाथ में त्रिशूल, प्रथम दक्षिण हाथ में वज्र, दूसरे वाम हाथ में घण्टा, दूसरे दायें हाथ में कपाल है। बचे हुए दोनों हाथों में वज्रों की श्रृंखला है। जैसे भगवान् हैं वैसी ही प्रज्ञा भी है। दक्षिण और वाम हाथों में खड्ग और कपाल है। तीन धातु मुद्राओं में परिपूरित भगवान् हेवज्र हैं।

'देवता पटल' पूर्ण हुआ।

देवताभिषेकपटलः चतुर्थः

देवताभिषेकपटलं व्याख्यास्यामः -
स्वहृदि स्वबीजाद् रश्मिं निश्चार्य कृष्णदीप्तयाङ्कुशाकारया त्रैधातुकव्यवस्थितान् बुद्धानाकृष्याष्टमातृभिः संपूज्यानुनाययति । ओं अभिषिञ्चन्तु मां सर्वतथागता इति ॥ १ ॥

अब देवता अभिषेक पटल की व्याख्या करते हैं – अपने हृदय में सूर्य में स्थित बीज हूँ से रश्मियों को निकालकर भयंकर रूप से प्रदीप्त श्री भगवान् हेवज्र की पूजा के लिए त्रैधातुक में व्यवस्थित बुद्धों का आवाहन करके अष्ट गौरी आदि मातृकाओं के द्वारा पूजा करके उनकी प्रार्थना करते हैं। ऊँ मेरे ऊपर सभी तथागत कृपा करें ।

[कृपा वर्षा करें अभिषेक करें]

तैर्बुद्धैर्हेरुकाकाररूपैः पञ्चामृतभृतैः पञ्चतथागतात्मकैः कलशैः पञ्चभिरभिषिच्यते। अभिषिच्यमाने पुष्पवृष्टिर्भवति। दुन्दुभिशब्द उच्चलति कुङ्कुमवृष्टिर्भवति ॥ २ ॥

वे सभी बुद्ध, जिन्होंने हेरुक का रूप धारण किया है, पाँच अमृत-दिव्यरूप से युक्त होकर, पाँच तथागत के स्वरूप को धारण करके कलश में अवस्थित जल से अभिषेक करते हैं। उनके द्वारा अभिषेक करने के बाद वहाँ पुष्पवृष्टि होती है। दुन्दुभि वाद्य विशेष से शब्द निःसृत होते है [दुन्दुभि बजने लगते हैं] कुमकुम की वृष्टि होती है।

रूपवज्रादिभिः संपूज्यते। वज्रगीत्यो लोचनादिभिर्गीयन्ते।
अभिषिच्यमाने मूर्ध्नि स्वकुलेशो भवति।
एतेन हेरुको निष्पन्नः।
त्रिसन्ध्याधिष्ठानभावनां विभाव्योत्तिष्ठेत्।
देवतामूर्त्या स्थातव्यम् ॥ ३॥

रूप वज्र आदि से पूजा होती है। लोचना आदि मातृका गण वज्रगीत का गान करती हैं। अभिषेक के अवसर पर ही शिर में अपने कुलदेवता का आविर्भाव होता है। इससे हेरुक की उत्पत्ति होती है। तीनों सन्ध्याओं में हेवज्र की भावना करके ही उठना चाहिए। उसके बाद देवता मूर्ति के सामने बैठना चाहिए ।

पूर्वोक्त क्रम में ही हेवज्र नामक देवता का इस पटल में निष्पादन होने से देवता पटल कहा गया है। उन्हीं हेवज्र का अभिषेक करके ज्ञानरूपी जल से अपने सभी आवरण-मलों का क्षालन करने के लिए ही यहाँ अभिषेक करने की बात कही गई है।

मूर्धा = शिर में अक्षोम्य की उत्पत्ति बतलायी गयी है।

देवताभिषेक पटल पूर्ण हुआ।

पञ्चमः तत्त्वपटलः

अथ तत्त्वपटलं व्याख्यास्यामः। स्वरूपेण -
नास्ति रूपं न द्रष्टा च न शब्दो नापि श्रोता च।
न गन्धो नापि घ्राता च न रसो नापि रासकः ।
न स्पर्शो नापि स्प्रष्टा च न चित्तं नापि चैत्तिकम् ॥१ ॥

अब तत्त्व पटल की व्याख्या करते हैं। अपने स्वरूप में [नहीं हैं] - रूप नहीं है, द्रष्टा भी नहीं है। शब्द और श्रोता भी नहीं है। गन्ध और सुँघने वाला दोनों नहीं हैं। रस और उसका अनुभवकर्ता भी नहीं है। स्पर्श और स्पर्श करने वाला भी नहीं है। चित्त और चैतसिक [चित्त के धर्म] भी नहीं हैं।

जननीं भगिनीं चैव पूजयेद् योगवित् सदा ।
नटीं च रजकीं वज्रां चण्डालीं ब्राह्मणीं तथा ।
प्रज्ञोपायविधानेन पूजयेत् तत्त्ववत्सलः ॥ २ ॥

माँ और बहन दोनों की पूजा योगविद् को करना चाहिए। इसी प्रकार नर्तकी, धोबिनी, वज्रा, चाण्डाली, और ब्राह्मणी की भी पूजा करनी चाहिए। और वह पूजा प्रज्ञा और उपाय के विधान के द्वारा ही होना चाहिए क्योंकि तत्त्ववेत्ता के द्वारा वे दो उपाय सदा गृहीत ही होते हैं।

सेवितव्याः प्रयत्नेन यथा भेदो न जायते ।
अगुप्ते क्रियते दुःखं व्याडचौराग्निभूचरैः ॥ ३ ॥

उनकी पूजा और सेवा इस प्रकार किया जाना चाहिए कि जिसमें भेद बुद्धि का उदय ही न हो सके। जब भी कोई कर्म करते हैं उस समय यदि गोपनीयता न हो तो सर्प, व्याघ्र, अग्नि, चौर, नरपिशाच आदि द्वारा विघ्नजन्य दुःख होते हैं इसीलिए हमेशा गोपनीय ही रखना चाहिए।

मुद्राः पञ्चकुलानीति कथ्यते मोक्षहेतुना ।
वज्रेण मुद्र्यतेऽनेन मुद्रा तेनाभिधीयते ॥ ४ ॥

मुद्रा पाँच और कुल भी पाँच होते हैं और वे सब मोक्ष के कारण हैं। इन्हें भी वज्र के द्वारा बन्ध किया जाता है इसी से इन्हें 'मुद्रा' कहा गया है।

वज्र पद्म तथा कर्म तथागत रत्नैव च ।
कुलानि पञ्चविधान्याहुरुत्तमानि महाकृप ॥ ५ ॥

हे महाकृपालु! पाँच कुल अति प्रसिद्ध हैं और उत्तम भी हैं। जैसे कि वज्र, पद्म, कर्म, तथागत एवं रत्न निकाय ।

वज्रे डोम्बी भवेन्मुद्रा पद्मे नर्ती तथैव च ।
कर्मणि रजक्याख्याता ब्राह्मणी च तथागते ॥ ६ ॥

वज्र में डोम्बी, पद्म में नर्ती, कर्म में रजकी तथा तथागत में ब्राह्मणी मुद्रायें होती हैं।

रत्ने चण्डालिनी ज्ञेया पञ्चमुद्रा विनिश्चिताः ।
तथागतकुलं चैतत् संक्षेपेणाभिधीयते ॥ ७ ॥

रत्न में चण्डालिनी जानना चाहिए। साथ ही वे सभी पाँच मुद्रायें निश्चित की गयी हैं। इसी प्रकार तथागत कुल भी संक्षेप में कहा जाता है।

तथातायां गतः श्रीमानागतश्च तथैव च ।
अनया प्रज्ञया युक्त्या तथागतोऽभिधीयते ॥ ८ ॥

'तथता' में जाने से, ऐश्वर्य आने से और इसी प्रकार इस प्रज्ञा से संनिहित होने से ही उन्हें तथागत कहा गया है।

कुलानि षड्विधान्याहुः संक्षेपेण तु पञ्चधा ।
पश्चाच्च त्रैविध्यं यान्ति कायवाक्चित्तभेदेन ॥ ९ ॥

कुल छह प्रकार के होते हैं किन्तु संक्षेप में उन्हें पाँच प्रकार के हैं ऐसा कहा गया है। बाद में फिर वे तीन प्रकार के होते हैं। वे हैं – काय, वाक् और चित्त ।

कुलानां पञ्चभूतानां पञ्चस्कन्धस्वरूपिणाम् ।
कुल्यते गण्यतेऽनेन कुलम् इत्यभिधीयते ॥ १० ॥

पाँच प्रकार के कुल ही पञ्च स्कन्ध हैं। संख्यात्मक रूप से गणना करने से ही इसे कुल कहा गया है।

नास्ति भावको न भावोऽस्ति मन्त्रं नास्ति न देवता ।
संस्थितौ मन्त्रदेवौ च निःप्रपञ्चस्वभावतः ॥ ११ ॥

कोई भावक = कर्ता नहीं है, कर्म भी नहीं है। मन्त्र और देवता भी नहीं हैं। देवता और मन्त्र हैं किन्तु निस्प्रपञ्च स्वभाव से युक्त हैं।

वैरोचनाक्षोभ्यामोघश्च रत्नारोलिक्च सात्त्विकः ।
ब्रह्मा विष्णुः शिवः सर्वो विबुद्धस्तत्त्वमुच्यते ॥ १२ ॥

वैरोचन, अक्षोभ्य, अमोघ वे ही सभी बुद्ध के प्रतिनिधिभूत हैं क्योंकि उन्हीं में सब तथागत अवस्थित हैं वे ही वज्र सत्त्व भी हैं। वे ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति आदि विशिष्ट तत्त्व हैं।

ब्रह्मा निर्वृतितो बुद्धः विषणाद् विष्णुरुच्यते ।
शिवः सदा सुकल्याणात् सर्वः सर्वात्मनि स्थितः ॥ १३ ॥

ब्रह्मा मुक्त हुए और बुद्ध हो गए। विष्णु पूर्णरूप से उसी में प्रविष्ट हुए इसी से बुद्ध ही विष्णु हो गए। हमेशा कल्याणात्मक होने से वे ही शिव हो गए। सर्व-शक्ति ही सभी में स्थित होने से सर्व हो गये वे बुद्ध ही हैं।

सत्सुखत्वेन तत्त्वं च विबुद्धो बोधनात् रतेः ।
देहे संभवतीत्यस्माद् देवतेति निगद्यते ॥ १४ ॥

सर्वत्र सुखरूप होने से तत्त्व कहलाते हैं। आनन्द से बोधित होने से विबुद्ध हो गए। शरीर अर्थात् देह में होने से ही वे देवता कहलाते हैं।

भगोऽस्यास्तीति बुद्धस्य भगवानिति कथ्यते ।
भगानि षड्विधान्याहुरैश्वर्यादि गुणाखिलाः ।
अथवा क्लेशादिमाराणां भञ्जनाद् भगवानिति ॥ १५ ॥

भगयुक्त होनें से ही बुद्ध भगवान् कहलाते हैं। भग छह प्रकार के हैं -

ऐश्वर्य आदि, जिसमें सभी गुण रहते हैं अथावा क्लेशों का भञ्जन करने से ही वे भगवान् कहलाते हैं।

जननी भण्यते प्रज्ञा जनयति यस्माज्जगत् ।
भगिनीति तथा प्रज्ञा विभागं दर्शयेद्यथा ॥ १६ ॥

प्रज्ञा को ही जननी कहा गया है क्योंकि जिससे सारा जगत् उत्पन्न होता है। प्रज्ञा को ही भगिनी भी कहते हैं क्योंकि वही इस जगत् में विभाग भेद दिखलाती है।

रजकीति दुहिता च नर्तकी च प्रकथ्यते ।
रञ्जनात् सर्वसत्त्वानां रजकीति तथा स्मृता ॥ १७ ॥

लड़की को ही रजकी और नर्तकी भी कहा गया है। क्योंकि वह सभी प्राणियों का रञ्जन करती है इसी से रजकी कहलाती है।

गुणस्य दुहनात् प्रज्ञा दुहिता च निगद्यते ।
नर्तकी भण्यते प्रज्ञा चञ्चलत्वान् महाकृप ।
अस्पर्शा भगवती यस्मात् तस्माद् डोम्बी प्रकथ्यते ॥ १८ ॥

गुणों का दोहन करने से भी प्रज्ञा को ही दुहिता कहा गया है। प्रज्ञा को ही नर्तकी भी कहते हैं क्योंकि वह चञ्चल स्वभाव वाली भी है। यह स्पर्श करने के अयोग्य होने से ही 'डोम्बी' कहलाती है।

जल्पनं जपमाख्यातमालिकाल्योः प्रजल्पनात् ।
मण्डलं पादलेखः स्यान् मलनाद् मण्डलमुच्यते ॥ १९ ॥

आलि और कालि का जल्पन ही जप कहलाता है। क्योंकि वे निरन्तर शब्दात्मक हैं। पाउ (पाद) का रखना ही मण्डल है अथवा हेवज्र के आक्रमण के कारण भी उसे मण्डल कहा गया है।

करस्फोटो भवेन्मुद्रा अङ्गुल्यामोटनं तथा ।
तद् ध्येयं चिन्तितं यच्च ध्यानं यस्माद् विचिन्तनम् ॥ २० ॥

हाथों का स्फोट (भङ्गिमा) ही मुद्रा है। अथवा अङ्गुलियों का संचालन-संकुचन आदि भी मुद्रा ही है। चिन्तन करना ही ध्येय है उसी से ध्यान का भी प्रादुर्भाव होता है। वही विशिष्ट चिन्तन भी कहलाता है।

पितरि प्राप्तं यत् सौख्यं तत् सुखं भुज्यते स्वयम् ।
मरणं येन सुखेन तत् सुखं ध्यानमुच्यते ॥ २१ ॥

पिता के समक्ष जो सुख प्राप्त होता है उसी का सुखपूर्वक सेवन स्वयं किया जाता है। उसी सुख से जो मरण होता है वही ध्यान कहलाता है।

तत्त्व पटल पूर्ण हुआ ।

चर्यापटलः षष्ठः

अतः परं प्रवक्ष्यामि चर्यां पारङ्गतां वराम् ।
गम्यते येन सिद्धान्तं [तः] हेवज्रे सिद्धिहेतुना ॥१ ॥

इसके बाद, अब अत्यन्त श्रेष्ठ पारङ्गत चर्या की व्याख्या करता हूँ जिससे साधक हेवज्र के सिद्धि में पारङ्गत होता है और उसके सिद्धान्तों को भी जान जाता है।

भावकेन विधर्तव्यं कर्णयोर्दिव्यकुण्डलम् ।
शिरसि चक्री धर्तव्या हस्तयोरुचकद्वयम् ॥ २ ॥

साधक को दोनों कानों में दिव्य कुण्डल धारण करना चाहिए। शिर में चक्र धारण करना चाहिए। दोनों हाथों में दो बालायें धारण करना चाहिए।

कटयां वा मेखलं चैव पादयोर्नूपुरं तथा ।
बाहुमूले च केयूरं ग्रीवायामस्थिमालिका ॥ ३ ॥

कटि में मेखला, दोनों पैरों में नूपुर धारण करें। बाहुमूल–भुजांश प्रदेश में केयूर, गले में हड्डियों की माला होनी चाहिए।

परिधानं व्याघ्रचर्म भक्षणं दशार्धामृतम् ।
हेरुकयोगस्य पुंसो विहारः पञ्चवर्णेषु ॥ ४ ॥

व्याघ्रचर्म का भी धारण करना चाहिए। पञ्चामृत का भक्षण करना चाहिए। हेरुक के साधक को नीच जाति के लोगों के साथ आहार विहार करना चाहिए।

पञ्चवर्णसमायुक्तमेकवर्णं तु कल्पितम् ।
अनेकेनैकवर्णेन यस्माद् भेदो न लक्ष्यते ॥ ५ ॥

पाँच वर्ण और एक वर्ण (जाति) दोनों की कल्पना की गयी है क्योंकि एक वर्ण और अनेक वर्णों में कोई भेद परिलक्षित नहीं होता।

एकवृक्षे श्मशाने वा भावना कथ्यते शुभा ।
मातृगृहे तथा रम्ये ऽथवा विजने प्रान्तरे ॥ ६ ॥

एक ही वृक्ष के नीचे, अथवा श्मशान प्रदेश में की गई भावना-साधना अत्यन्त शुभ होती है। अथवा मातृगृह-मन्दिर में अथवा रमणीय विजन स्थल में या वन में भी साधक के लिए अत्यन्त शुभ होता है।

किञ्चिदूष्मे तु संप्राप्ते चर्यां कर्तुं यदीष्यते ।
सिद्धिं गन्तुं यदीच्छास्ति चर्यया त्वनया चरेत् ॥ ७ ॥

कुछ-कुछ उष्ण स्थान में जो चर्या की जाती है या करने की इच्छा होती है वहीं पर सिद्धि मिलती है। इसीलिए ऐसे ही स्थलों में चर्या में लगना चाहिए।

चारुवक्त्रां विशालाक्षीं रूपयौवनमण्डिताम् ।
नीलोत्पलश्यामाङ्गीं च स्वाभिषिक्तां कृपावतीम् ।
वज्रकन्यामिमां गृह्य चर्यां कर्तुं विबुध्यते ॥ ८ ॥

सुन्दर मुख वाली, बड़े बड़े आँखों वाली, रूप और यौवन से मण्डित, नीलकमल के तरह श्यामवर्णवाली, स्वयं अभिषेक की हुई कृपायुक्त इस वज्रकन्या को लेकर ही चर्या करने से सिद्धि प्राप्त होती है।

वज्रकुलाभावात् स्वेष्टदेवकुलेन क्रीयते ।
अथवान्यकुलोद्भवा
बोधिबीजनिक्षेपेण संस्कृतामिमां गृह्णीयात् ॥ ९ ॥

यदि वज्रकुलयुक्त कन्या न हो तो अपने ही इष्टदेवकुल की कन्या को लेकर साधना करनी चाहिए, अथवा अन्य कुल में उत्पन्न कन्या को बोधि बीज का निक्षेपण करके संस्कार सम्पन्न बनाकर साधना करनी चाहिए।
यदि गीतं गीयत आनन्दात् तर्हि वज्रान्वितं परम् ।

यद्यानन्दे समुत्पन्ने नृत्यते मोक्षहेतुना ।
तर्हि वज्रपदैः नाट्यं कुर्याद् योगी समाहितः ॥ १० ॥

यदि आनन्दपूर्वक गीत का गायन किया जाता है तो उससे परम वज्रगीत अर्थात् सत्यद्वययुक्त वज्रगीत की उत्पत्ति होती है । उससे यदि आनन्द उत्पन्न होता है तो मोक्ष के लिए ही नृत्य किया जाता है। उसके बाद योगी को वज्र पदों के साथ एकाग्र होकर नृत्य करना चाहिए।

अक्षोभ्यश्चक्रीरूपेणामिताभः कुण्डलात्मकः ।
रत्नेशः कण्ठमालायां हस्ते वैरोचनः स्मृतः ॥ ११ ॥
मेखलायां स्थितोऽमोघः प्रज्ञा खट्वाङ्गरूपिणी ।
डमरूपायरूपेण योगी द्वेषविशुद्धितः ॥ १२ ॥

उस विचित्र साधनाचर्या की अवस्था में चक्र के रूप में भगवान् अक्षोभ्य उपस्थित होते हैं, कुण्डल के रूप में भगवान् अमिताभ उपस्थित होते हैं। कण्ठ में माला के रूप में भगवान् रत्नेश आते हैं। हाथ में वैरोचन आते हैं। मेखला में अमोघ उपस्थित होते हैं। प्रज्ञा ही खट्वाङ्ग के रूप में उपस्थित होती हैं। उपाय ही डमरू के रूप में प्रकट होते हैं। इस अवसर पर द्वेष विशुद्ध रूप में योगी की स्थिति होती है।

मन्त्रविशुद्ध्या स्थिता गीता नर्तना भावना स्मृता ।
तस्माद् गीतञ्च नाटयञ्च कुर्याद् योगी सदा सदा ॥ १३ ॥

मन्त्र के विशुद्ध होने से गीत भी वहीं पर अवस्थित है। भावना ही नर्तकी है। इसीलिए गीत और नृत्य सदा योगी को करते ही रहना चाहिए।

भक्षितव्यं तु भैषज्यं पातव्यं वारि नित्यताम् ।
जरामृत्युर्न बाधेत रक्षाभूतः सदा भवेत् ॥ १४ ॥

औषधि का सदा सेवन करना चाहिए। निरन्तर जल का पान करना चाहिए। वे दोनों ही योगी की सदा रक्षा करते हैं इसलिए ऐसे योगी को जरा और मृत्यु कभी भी बाधित नहीं करते हैं।

चौर्यकेशकृतां मुकुटीं तत्र हूं-भवो योजयेत् ।
पञ्चबुद्धकपालानि धर्तव्यं योगचर्यया ॥ १५ ॥

चोरी के द्वारा लाए गए केश से बने मुकुट धारण करने वाले भगवान् अक्षोम्य का योजन = भावना करनी चाहिए। योगचर्या के अवसर पर पञ्च बुद्ध मुकुटों को भी धारण करना चाहिए ।

पञ्चाङ्गुलकपालखण्डं कृत्वा मुकुटचां ध्रियते सदा ।
कचडोरी द्विवेता च प्रज्ञोपायस्वभावतः ।
भस्म केश-पवित्रं च योगी बिभर्ति चर्यया ॥१६ ॥

पाँच अङ्गुली परिमाण के कपाल खण्ड का मुकुट बनाकर साधकों को धारण करना चाहिए। केश की डोरी प्रज्ञा और उपाय युक्त दो विषयों के प्रतीक होते हैं। उक्त चर्या के अवसर पर भस्म और यज्ञोपवीत धारण किए जाते हैं योगियों के द्वारा।

जापो डमरुकशब्दः प्रज्ञाखट्वाङ्गो भावना ।
जाप्यं भाव्यं भवेदेतद् वज्रकपालचर्यया ॥१७ ॥

जप करना जो डमरु शब्द का उच्चारण है, प्रज्ञा और उपाय की भावना जो खट्वाङ्ग का प्रतीक है, इन दोनों का जाप और भावना किये जाते हैं जब वज्र कपाल चर्या की जाती है।

लोभं मोहं भयं क्रोधं व्रीडाकार्यञ्च वर्जयेत् ।
निद्रामात्मानमुत्सृज्य चर्यां कुर्यान् न संशयः ॥१८ ॥

लोभ, मोह, भय, क्रोध और लज्जा का भी त्याग करना चाहिए। निद्रा और अपने शरीर का भी त्याग करते हुए चर्या करनी चाहिए इसमें संशय नहीं है।

शरीरं दानं दत्वा च पश्चाच्चर्यां समारभेत् ।
भागाभागविचारेण तस्माद्दानं न दीयते ॥१९ ॥

सभी बुद्ध एवं सभी प्राणियों को अपने शरीर का भी दान करके ही चर्या में गलना चाहिए। भाग्य और दुर्भाग्य का विचार करके दान नहीं किया जाता है।

भक्ष्यं भोज्यं तथा पानं यथाप्राप्तं तु भक्षयेत् ।
ग्रहणं नात्र कर्त्तव्यमिष्टानिष्ट-विकल्पतः ॥ २० ॥

भोजन जैसा मिल जाता है उसे उसी रूप में ग्रहण करना (खाना) चाहिए। यह अच्छा है यह अच्छा नहीं है इस भावना से भोजन नहीं करना चाहिए।

भक्ष्याभक्ष्यविचारं तु पेयापेयं तथैव च ।
गम्यागम्यं तथा मन्त्री विकल्पं नैव कारयेत् ॥ २१ ॥

भक्ष्य और अभक्ष्य का, पेय और अपेय का, गम्य और अगम्य का विकल्प मन्त्र वेत्ता योगी को नहीं करना चाहिए।

सिद्धिलब्धोऽपि यः शिष्यः सम्यग्ज्ञानावभासकः ।
अभिवन्दयति गुरं सिद्धो ऽवीच्या त्याज्यहेतुना ॥ २२ ॥

सिद्धि प्राप्त करने के बाद भी शिष्य अपने गुरु का आदर-अभिनन्दन-सेवा करे, क्योंकि गुरू ही सम्यक् ज्ञान का प्रदाता होता है यदि वह गुरू का सत्कार नहीं करता है तो वह पतित हो जाता है, गुरू के द्वारा त्याग दिया जाता है।

शिक्षादीक्षाविर्निमुक्तो लज्जाकार्यं तथैव च ।
सर्वभावस्वभावेन विचरेद् योगी महाकृपः ॥ २३ ॥

शिक्षा, दीक्षा आदि का ध्यान बिना किए हुए और सभी लज्जाओं का त्याग करके ही योगी को घूमते रहना चाहिए, जो महा कृपालु होता है।

होमयागतपोऽतीतो मन्त्रध्यानविवर्जितः ।
समयसंवरविनिर्मुक्तश्चर्यां कुरुते सुयोगवान् ॥ २४ ॥

होम, याग एवं तपस्या आदि रहित, मन्त्र, ध्यान आदि विवर्जित, सिद्धान्त एवं असिद्धान्त रहित होकर ही योगयुक्त योगी विचरण करते हैं।

शक्रतुल्योऽपि यो दैत्यः पुरतो भवति निश्चितम् ।
भयं तत्र न कुर्वीत सिंहरूपेण पर्यटेत् ॥ २५ ॥

योगी जब सिंह रूप से विचरण करते हैं तब उनके सामने शुक्राचार्य के समान शक्ति सम्पन्न दैत्य उपस्थित हो सकते हैं तो भी भयभीत नहीं होना चाहिए।

करुणा पीयते नित्यं सर्वसत्त्वार्थहेतुना ।
योगपानरतो योगी नान्यपानेन मज्जनम् ॥ २६ ॥

सभी प्राणियों के कल्याणार्थ करुणा का ही योगी पान करते हैं। योग का ही पान करने के लिए लगे हुए योगी अन्य मदिरा आदि का पान नहीं करते हैं – न ही करना चाहिए ।

चर्यापटल पूर्ण हुआ।

छोमापटलः सप्तमः

अथ छोमापटलं व्याख्यास्यामः -

येन विज्ञायते भ्राता भगिनी च न संशयः ॥१ ॥

अब छोमा पटल की व्याख्या करते हैं - जिसके द्वारा भाई और बहन का ज्ञान होता है इसमें सन्देह नहीं है।

अङ्गुलीं दर्शयेद्यस्तु आगतमित्युक्तं भवेत् ।

द्वाभ्यां सुस्वागतो भवेत् ।

क्षेममुद्रां विजानीयाद् वामाङ्गुष्ठनिपीडनात् ॥ २ ॥

[यहाँ छोमा का अर्थ है - समय व सिद्धान्त की अङ्ग भूत मिलिच्छा नामक योगिनियों का नाम ही छोमा है उसे वर्णन करने से छोमा पटल नाम हुआ है] एक अंगुली का प्रदर्शन करने से आ गया है ऐसा अर्थ हो जाता है। दो अङ्गुलियों का प्रदर्शन स्वागत के लिए किया जाता है। वाम अंगुष्ठ पकड़ने से क्षेम = कल्याण मुद्रा हो जाता है।

अनामिकां तु यो दद्यात् दद्यात्तस्य कनिष्ठिकाम् ।

मध्यमां दर्शयेद्यस्तु दद्यात्तस्य प्रदेशिकाम् ॥ ३ ॥

जो योगी अनामिका अंगुली दिखाता है उसे कनिष्ठिका दिखा देना चाहिए। मध्यमा जो देता है उसे तर्जनी दे देना चाहिए।

अनामिकां दर्शयेद्यस्तु ग्रीवां तस्य प्रदर्शयेत् ।

पटं संदर्शयेद्यस्तु त्रिशूलं तस्य दर्शयेत् ॥ ४ ॥

जो योगी अनामिका दिखाता है उसे ग्रीवा दिखाना चाहिए। जो कपड़ा दिखाता है उसे त्रिशूल दिखाना चाहिए।

स्तनं दर्शयेद्यस्तु सीमान् तस्य प्रदर्शयेत् ।

मेदिनीं दर्शयेद्यस्तु चक्रं तस्य प्रदर्शयेत् ॥ ५ ॥

जो स्तन दिखाता है उसे ललाट के ऊपर स्थित आज्ञा चक्र दिखाना चाहिए। जो पृथ्वी को दिखाता है उसे चक्र दिखाना चाहिए।

भृकुटीं दर्शयेद्यस्तु शिखामोक्षो विधीयते ।

ललाटं दर्शयेद्यस्तु पृष्टं तस्य प्रदर्शयेत् ॥ ६ ॥

जो भृकुटी दिखाता है उसके लिए शिखा खोल देना चाहिए। जो ललाट दिखाता है उसे पृष्ठ भाग दिखा देना चाहिए।

पादतलं दर्शयेद्यस्तु क्रीडते कौतुकेन तु ।

मुद्रा प्रतिमुद्रेण भेदयेत् समयेन तु ॥ ७ ॥

पाद का तल जो दिखाता है उसे कौतुक पूर्वक प्रतिमुद्राओं का प्रदर्शन करना चाहिए। उस संकेत के द्वारा उसे उद्घाटित करना चाहिए।

वदन्ति तत्र योगिन्य अहो पुत्र महाकृप ।

यदि मालाहस्तं दर्शयन्ति तत्र मिलितव्यमिति कथयन्ति ॥ ८ ॥

मुद्राओं के उद्घाटन करने पर योगिनियाँ 'ओ कृपालु पुत्र' ऐसा कहती हैं। यदि मालाओं से युक्त हाथ दिखाते हैं तो हमें मिलना चाहिए ऐसा कहती हैं।

मालामभिप्रेषितां कृत्वा समये तिष्ठ सुव्रता ।

भजेति तत्र मेलायां दिव्यगोचरमाश्रित्य ।

यद्धि वदन्ति योगिन्यस्तत् सर्वमेव कर्त्तव्यम् ॥ ९ ॥

मालाओं का संप्रेषण करके अपने चर्या में हे सुव्रत स्थित हो जाओ। वहाँ मेला में दिव्य अवस्था में रहकर चर्या का आचरण करते रहो और जो कुछ योगिनियाँ कहती हैं उसे करना ही चाहिए।

वज्रगर्भ उवाच - हे भगवन्! के ते मेलापकस्थानाः।

भगवानाह -

ते पीठं चोपपीठं च क्षेत्रोपक्षेत्रमेव च ।

छन्दोहं चोपच्छन्दोहं मेलापकोपमेलापकस्तथा ।

पीलवं चोपपीलवं श्मशानोपश्मशानकम् ॥१० ॥

एता द्वादश भूमयः ।

दशभूमीश्वरो नाथ एभिरन्यैर्न कथ्यते ॥ ११ ॥

वज्रगर्भ ने कहा - हे भगवन् वे मेला के स्थान कौन कौन से हैं? भगवान् ने कहा - वे पीठ, उपपीठ, क्षेत्र, उपक्षेत्र हैं। छन्द, उपछन्द, मेलापक, उपमेलापक, मीलक, उपमीलक, श्मशान और उपश्मशान वे ही बारह स्थान हैं। इसीलिए इन्हीं से देश भूमीश्वर नाथ कहलाते हैं।

वज्रगर्भ उवाच - हे भगवन् ! के ते पीठादयः ।

भगवानाह -

पीठं जालन्धरं ख्यातमोड्डियानं तथैव च ।

पीठं पौर्णगिरिश्चैव कामरूपं तथैव च ॥१२ ॥

वज्रगर्भ ने पूछा - हे भगवन् वे कौन है पीठ आदि? भगवान् ने कहा - (हे वज्रगर्भ!) जालन्धर अति प्रसिद्ध पीठ है, उसी प्रकार उड्डीयान भी पीठ है। पूर्णागिरि और कामरूप भी पीठ हैं।

उपपीठं मालवं प्रोक्तं सिन्धुर्नगरमेव च ।

क्षेत्रं मुन्मुनि प्रख्यातं क्षेत्रं कारुण्यपाटकम् ।

देवकोटं तथा क्षेत्रं कर्मारपाटकम् ॥१३ ॥

उपपीठों में - मालव और सिन्धु तथा पाटलीपुत्र नगर भी हैं। क्षेत्र हैं - प्रख्यात मुन्मुनि, करुणापाट, देवकोटि और कर्मार पाटक भी क्षेत्र ही है।

उपक्षेत्रं कुलता प्रोक्तमर्बुदश्च तथैव च ।

गोदावरी हिमाद्रिश्च उपक्षेत्रं हि संक्षिपेत् ॥१४ ॥

उपक्षेत्रों में कुलता, अर्बुद, गोदावरी तथा हिमालय (संक्षेप में) उपक्षेत्र कहलाते हैं।

छन्दोहं हरिकेलं च लवणसागरमध्यजम् ।
लम्पाकं काञ्चिकं चैव सौराष्ट्रं च तथैव च ॥ १५ ॥

छन्द, हरिकेल, समुद्र, लम्पाक, काञ्चि एवं सौराष्ट्र वे छन्द हैं।

कलिङ्गमुपछन्दोहं द्वीपं चामीकरान्वितम् ।
कोकणं चोपछन्दोहं समासेनाभिधीयते ॥ १६ ॥

उसी प्रकार कलिङ्ग द्वीप चामीकर युक्त कोंकण, संक्षेप में वे ही उपच्छन्द कहलाते हैं।

पीलवं च ग्रामान्तस्थं पीलवं नगरस्य च ।
चरित्रं कोशलं चैव विन्ध्या कौमारपौरिका ।
उपपीलवं तत्सन्निवेशं वज्रगर्भ महाकृप ॥ १७ ॥

पीलव - ग्राम के अन्तिम में स्थित पीलव है एवं नगर के अन्तिम में स्थित भी पीलव है। चरित्र, कोशल, विन्ध्य, कुमारपुर, एवं उनका सन्निवेश ही उपपीलव कहलाते हैं - हे महाकृपालु वज्रगर्भ!

श्मशानं प्रेतसंहातं श्मशानं चोदधेस्तटम् ।
उद्यानं वापिकातीरम् उपश्मशानं निगद्यते ॥ १८ ॥

प्रेतों का निवास स्थान और समुद्रों का किनारा श्मशान कहलाता है। उद्यान और कूपों के निकट स्थान को उपश्मशान कहते हैं।

दिवसं चैव वक्ष्यामि योगिनीनां सुमेलकम् ।
हेवज्रे योगिनीतन्त्रे सर्वसत्त्वार्थहेतुना ॥ १६ ॥

मैं अब दिन के विषय में बतलाता हूँ योगिनियों का जिसमें मिलन होता है। सभी प्राणियों के कल्याणार्थ योगिनी तन्त्र हेवज्र में बतलाया गया है।

वज्रगर्भ उवाच - हे भगवन्, के ते दिवसाः।

भगवानाह -

प्रेतपक्षे चतुर्दश्यामष्टम्याञ्च तथैव च ॥ २० ॥
ध्वजं शस्त्रहतं चैव सप्तावर्तं च भक्षयेत् ।
कृपामुत्पाद्य यत्नेन मारणं क्रियते विदुः ॥ २१ ॥

वज्र गर्भ ने पूछा - हे भगवन् वे दिवस (दिन) कौन हैं? भगवान् ने उत्तर दिया - कृष्णपक्ष में चतुर्दशी एवं अष्टमी में भी शस्त्र के द्वारा हत ध्वजा एवं

सप्तावर्त का भक्षण करना चाहिए। यत्नपूर्वक कृपा का उत्पादन करके मारण करना चाहिए ऐसा जाना गया है।

कृपाहीना न सिध्यन्ति तस्मात् कृपामुत्पादयेत् ।
दुष्टावतारणे सर्वं विधिमुख्यात् प्रसिध्यति ॥ २२॥

कृपा विहीन साधक सिद्ध नहीं होते हैं। इसीलिए कृपा का आश्रय लेना चाहिए। दोषों का शमन करने के लिए मन्त्र विशेष विधि से सिद्ध होते हैं।

तत्रैवं मन्तव्यम्
दिनस्तु भगवान् वज्री नक्तं प्रज्ञा च भण्यते ॥ २३॥
नाकार्यं विद्यते किञ्चिन्नाभक्ष्यं विद्यते सदा ।
नाचिन्त्यं विद्यते ह्यत्र नावाच्यं यच्छुभाशुभम् ॥ २४॥

वहीं पर मानना चाहिए - भगवान् वज्रधारक ही दिन हैं। प्रज्ञा रात्रि है। इसीलिए कुछ भी अकार्य एवं अभक्ष्य नहीं है। यहाँ अचिन्त्य एवं अवाच्य तथा शुभ एवं अशुभ कुछ भी नहीं है।

यथात्मनि तथा सत्त्वे तथात्मनि अहं परम् ।
इति संचिन्त्य योगात्मा खानपानादिमारभेत् ॥ २५ ॥

जैसे अपने में होता है वैसा ही प्राणी में तथा अपने में और स्वयं भी समान हैं ऐसा विचार करते हुए योगी को खान और पान में लगना चाहिए।

यावन्तो ह्यङ्गविक्षेपा वचसः प्रसराणि च ।
तावन्तो मन्त्रमुद्राः स्युः श्रीहेरुक-पदे स्थिते ॥ २६॥

जितने अङ्गों के विक्षेप हैं और वचनों का जितना भी प्रसार है उतने ही मन्त्र एवं मुद्रा होते हैं जब श्री हेरुक के पद में अवस्थिति होती है।

श्रीकारमद्वयं ज्ञानं हे-कारं हेत्वादिशून्यता ।
रुकारापगतव्यूहं क-कारं न क्वचित् स्थितम् ॥ २७॥

'श्री' से अद्वयज्ञान, 'हे' कार से शून्यता, 'रू' कार से अहंकार हीनता 'क' कार से कहीं न रहना यही बोध होता है।

येषां येषां च जन्तूनां पिशितमश्नीयते बुधैः ।
ते ते सत्त्वा वशं यान्ति वज्रकपालयोगतः ॥ २८॥

जिन प्राणियों का माँस योगियों के द्वारा भक्षण किया जाता है वे सभी प्राणी उनके वश में हो जाते हैं – यह सभी वज्र कपाल योग से ही संभव है।

छोमा पटल पूर्ण हुआ।

योगिनीचक्रनामक महायोगिनी मेलापकपटलः अष्टमः

अथ योगिनीचक्रं व्याख्यास्यामः –

खधातौ भगं ध्यात्वा मध्ये कुर्वीत भावनाम् ।
चक्रं पूर्वं यथान्यायं देवतानां यथोदयम् ॥ १ ॥

अब योगिनी चक्र का व्याख्यान करते हैं – [योगिनी नैरात्म्य को कहते हैं उसी की व्याख्या होने से यह योगिनीचक्र पटल कहा गया है] शून्यता बोधियुक्त आकाश धातु में 'भग' ध्यान की भावना करनी चाहिए। यथाक्रम से पहले चक्र की भावना करते हुए फिर देवताओं का ध्यान करना चाहिए।

चक्रं क्षोणी जलं पूर्वं यथान्यायं हुताशनम् ।
देवतानां महावायुर्भावकश्च यथोदयम् ॥ २ ॥

सबसे पहले चक्र, पृथ्वी, जल और क्रमशः अग्नि देवताओं में वायु और भावक यही मण्डल परम्परा है।

धर्मोदयोद्भवं चक्रं द्विपुटं हि निरामयम् ।
किञ्जल्केन भवेदेकं त्रिकोणेनापरं श्रुतम् ॥ ३ ॥

धर्मोदय अर्थात् त्रिकोणात्मक मुद्रा, उसमें होनेवाला उद्‌भव वही चक्र है और उसमें दो नगर हैं, वे भी अत्यन्त दोषरहित होने से अष्टदल कमल के समान कहे जाते हैं।

तन्मध्ये चिन्तयेन्मृतकं पञ्चदशासनात्मकम् ।
तस्योपरि भवेच्चन्द्रश्चन्द्रस्योपरि बीजकम् ॥ ४ ॥

उस कमलदल में शव की चिन्ता करनी चाहिए अर्थात् नैरात्म्य भावना करनी चाहिए। उसके ऊपर चन्द्रमा होंगे उसके ऊपर बीजाक्षर 'हूँ' कार का चिन्तन करना चाहिए।

पश्चान्मार्तण्डमाक्रान्तं द्वयोर्मेला महत् सुखम्।
स्थितालिश्चन्द्ररूपेण कालिरूपेण भास्करः ॥ ५॥

उसके बाद वहीं पर सूर्य का आवाहन अर्थात् सूर्य रश्मियों का चिन्तन करने के बाद दोनों का समागम (सूर्य और चन्द्र का) बहुत सुखद होता है। वहीं पर चन्द्र के रूप में आलि और सूर्य के रूप में काली विराजमान होती है।

चन्द्रसूर्यद्वयोर्मेलाद् गौर्याद्यस्ते प्रकीर्तिताः ।
आदर्शज्ञानवांश्चन्द्रः समतावान् सप्ताश्विकः ॥ ६॥

सूर्य और चन्द्रमा के मिलन के द्वारा ही गौरी आदि योगिनियों की उत्पत्ति होती है क्योंकि आदर्श ज्ञान-वाला चन्द्र है और समता ज्ञानवाला सूर्य है।

बीजैश्चिह्नैः स्वदेवस्य प्रत्यवेक्षणमुच्यते ।
सर्वैरकमनुष्ठानं निष्पत्तिः शुद्धिधर्मता ॥ ७ ॥

अपने देवता के बीज रूप चिन्ह से ही प्रत्यवेक्षण का ज्ञान होता है। सभी बीज निःसृत योगिनियों के द्वारा जिस अनुष्ठान की निष्पत्ति होती है वही शुद्धि धर्म है।

आकारान् भावयेत् पञ्च विधानैः कथितैर्बुधः ।
आलिकालिसमायोगो वज्रसत्त्वस्य विष्टरः ॥ ८॥

आदर्श आदि पाँच ज्ञानों की भावना विद्वानों के द्वारा करनी चाहिए। यही विधान तन्त्र शास्त्रों में किया गया है। आलि कालि समागम अर्थात् चन्द्र सूर्य का समागम ही सत्त्व वज्र का आसन है।

अक्षरोद्भवपिण्डस्य हूँ-फट-कारौ न चेष्येते ।
सत्त्वबिम्बसमुद्भूतं मण्डलेशं विभावयेत् ॥ ६ ॥

यह सत्त्व वज्र कौन है? अक्षरों से उत्पन्न चिन्ह गर्भ में बीजों का उत्पाद ही सत्त्व वज्र है। इसमें 'हूँ' कार और 'फट्' कार की आवश्यकता नहीं है। उस अवसर में सत्त्व वज्र से निःसृत मण्डलाधिपति नैरात्म्य की भावना करनी चाहिए।

पूर्ववद् वक्त्रचिह्नाद्यै श्चन्द्रकान्ति (न्त) मणिप्रभम् ।
एवं सर्वे च निष्पन्नाः प्रज्ञोपायस्वभावतः ॥ १० ॥

पहले के धर्म संकेत के तरह ही मुख, खड्ग, कपाल खड्वाङ्ग आदि के द्वारा पूर्ण चन्द्र के प्रभा के तरह सभी प्रज्ञा और उपाय के द्वारा सभी वज्र गौरी आदि निष्पन्न होते हैं।

प्रज्ञालिकाल्युपायेति चन्द्रार्कस्य प्रभेदनात् ।
गौर्याद्याश्च भवन्त्यस्माद् वर्णभेदं परं पृथक् ॥ ११ ॥

प्रज्ञा आलि है और उपाय कालि है तथा चन्द्र और सूर्य के प्रभेदन से गौरी आदि की उत्पत्ति होती है। इससे ही वर्णों में भेद पृथक् पृथक् रूप से होते हैं।

अध्यात्मकपुटे तावत् स्थिता वै पञ्चयोगिन्यः ।
पञ्चस्कन्धस्वभावेन भावयेद् योगवित् सदा ॥ १२ ॥

अध्यात्म क्षेत्र में पाँच योगिनियाँ स्थित रहती हैं। पञ्चस्कन्ध स्वभाव होने से, योगी को उन्हीं की भावना करनी चाहिए।

इन्द्रे वज्रा यमे गौरी वारुण्यां वारियोगिनी ।
कौवेर्यां वज्रडाकी च मध्ये नैरात्म्ययोगिनी ॥ १३ ॥

इन्द्र में वज्रा, यम में गौरी, वरुण में वारयोगिनी, कुबेर में वज्रडाकी और सभी के बीच में नैरात्म्य योगिनी शक्तियाँ रहती हैं।

बाह्यपुटे पुनः
गौरी चौरी वेताली च घस्मरी पुक्कसी तथा ।
शवरी चण्डाली चैव अष्टमी डोम्बिनी मता ॥ १४ ॥

बाह्यकोश में फिर – गौरी, चौरी, बेताली, घस्मरी और पुक्कसी, शबरी, चण्डाली और आठवीं डोम्बिनी कहलाती है।

अधोवत्यूर्ध्ववत्येव खेचरी भूचरी स्मृता ।
भवनिर्वाणस्वभावेन स्थितावेतौ द्विदेवते ॥ १५ ॥

अधोवती और ऊर्ध्ववती क्रमशः खेचरी और भूचरी कहलाती है। संसार में निर्वाण स्वभाव से वे दोनों स्थित हैं।

सर्वा देवत्यः

कृष्णवर्णा महारौद्रा पञ्चमुद्राविभूषिताः ।

एकवक्त्राश्च रक्ताक्षाः कर्त्रिकपालधृक्कराः ॥१६॥

सभी देवियाँ [इस प्रकार की हैं] - कृष्ण वर्ण से युक्त महारौद्रा हैं और पाँच मुद्राओं से विभूषित भी हैं। रक्त आँखों और एक मुख वाली हैं। वे खड्ग और कपाल धारण करती हैं ।

चक्री कुण्डलकण्ठी च हस्ते रुचकमेखला ।

पञ्चबुद्धविशुद्ध्या च पञ्चैते शुद्धमुद्रकाः ॥ १७ ॥

सर्वा एतादृशाः ख्याता यथा नैरात्म्ययोगिनी ।

कपालैककरव्यग्रा दक्षिणे कर्त्रिधारिकाः ॥१८॥

खट्वाङ्गं चैव वामेन व्याघ्रचर्मावृता कटिः ।

शवारूढा ज्वलद्दीप्ता द्विभुजाः पिङ्गमूर्धजाः ॥१९॥

तथा मानादि-षड्दोषान् कर्तितुं कर्त्रिका स्थिता ।

भावाभावविकल्पस्य शिरसा पद्मभाजनम् ॥ २०॥

चक्र धारण करनेवाली, कुण्डल धारण करने वाली हाथों में रुचक और मेखला धारण करती हुई, पञ्च बुद्धों की शुद्धि से युक्त और पाँच मुद्राओं से विभूषित भी हैं। वे सभी इस प्रकार से रहने वाली अति प्रसिद्ध नैरात्म्य योगिनियाँ है। एक हाथ में कपाल धारण करनेवाली और व्यग्र होती हुई तथा दक्षिण हाथ में खड्ग धारण करती हैं। वाम हाथ में खट्वाङ्ग साथ ही कटि में बाघ का चर्म लपेटती हुई, शव में आरूढ, जलती हुई आग जैसी तेजस्विनी, दो हाथ और ऊर्ध्व पिङ्गल जटा धारण करती है। मान मोह आदि छह दोषों को शमन करने के लिए ही खड्ग धारण करती है। साथ ही भाव और अभाव रूप विकल्पों का खण्डन करने के लिए ही शिर में कमलपात्र धारण करती है।

रक्तं च चतुर्माराणां पीयते सिद्धिहेतवे ।

खट्वाङ्गशून्यताकारैः शवोपायेन कल्पितम् ॥ २१ ॥

एतेन भावयेच्चक्रं लघु सिद्धिमवाप्नुयात् ।

प्रथमे भावयेत् कृष्णां द्वितीये रक्तमेव च ॥ २२ ॥

तृतीये भावयेत् पीतां चतुर्थे हरितां तथा ।

पञ्चमे नीलवर्णाञ्च षष्ठमे शुक्लदेहिकाम् ॥ २३ ॥

रक्त पद्म में स्थित होकर सिद्धि के लिए चार प्रकार के मारों का रक्त पी जाती है। खट्वाङ्ग रूप शून्याकार शव रूप उपाय द्वारा ही वह कल्पित है। इस प्रकार से चक्र की भावना द्वारा तत्काल ही सिद्धि प्राप्त होती है। पहले कृष्णा की भावना और दूसरे अवस्था में लाल की भावना करनी चाहिए। तृतीय क्षण में पिली और चतुर्थ क्षण में हरित वर्ण वाली, पञ्चम अवस्था में नील वर्ण वाली एवं छठे अवसर पर सफेद शरीर वाली का ध्यान करना चाहिए।

षडङ्गं भावयेद्योगी विरमान्तं पुनस्तथा ।
क्रममुत्पत्तिकं चैव उत्पन्नक्रममेव च ॥ २४ ॥

इस प्रकार छह वर्णों द्वारा षडङ्गों का ध्यान करते हुए ही योगी को फिर सहजानन्द में ही स्थित होना चाहिए। उत्पत्ति क्रम और उत्पन्न क्रमानुसार ही साधना करनी चाहिए।

क्रमद्वयं समाश्रित्य वज्रिणा धर्मदेशना ।
उत्पत्तिभागं कथितमुत्पन्नं कथयाम्यहम् ॥ २५ ॥

दोनों क्रमों को लेकर वज्ररूपधारी भगवान् ने धर्मों की देशना की है। उत्पत्ति क्रम का निरूपण किया ही जा चुका है अब उत्पन्न क्रम को कहने जा रहा हूँ ।

खधाताविति पद्येषु ज्ञानं भगमिति स्मृतम्।
भावनेति समापत्तिस्तत्सुखं चक्रमुच्यते ॥ २६ ॥

'खधातौ' आदि पद्यों के द्वारा धर्म धातु स्वभाव में उत्पन्न क्रम का निरूपण किया गया है। वह ज्ञान ही भग कहलाता है। उस भावना को ही समापत्ति भी कहा गया, उसका जो सुख है वही चक्र है।

यथान्यायं स्वसंवेद्यं बोधिचित्तं तु देवता ।
यथोदयं भेवच्छुक्रं द्वैविद्यं सहजं ततः ॥ २७ ॥

वह सुख भी अभ्रान्त एवं अत्यन्त उत्कृष्ट होता है। और वह वर्णनातीत इसीलिए स्वसंवेद्य कहा गया है वही बोधि चित्त है। उसके साथ देवता भी है, जैसा उदय होता है वैसा ही शुभ भी है। वह सहज सुख दो प्रकार का कहा गया है।

योषित् तावद्भवेत् प्रज्ञा उपायः पुरुषः स्मृतः ।
पश्चादनयोर्द्वैविध्यं विवृतिसंवृतिभेदतः ॥ २८ ॥

स्त्री ही प्रज्ञा है। उपाय पुरुष है। बाद में इनके विवृति और संवृति के कारण दो भेद हो गए हैं ।

पुंसि तावद्धि द्वैविध्यं शुक्रं तस्य सुखञ्च वा ।
प्रज्ञायां च यथा पुंसि शुक्रं तस्य सुखञ्च वा ॥ २६॥

पुरुष में दो भेद होने से शुक्र और सुख हो गए। प्रज्ञारूप स्त्री में भी पुरुष के तरह ही शुक्र ओर सुख हो गये।

अत्रैवापि ह्यानन्दानां चतसृणां प्रभेदनम् ।
सहजं चतुर्विधं यस्मादुत्पन्नक्रमपक्षतः ॥ ३० ॥

यहीं पर आनन्दों के चार प्रकार बतलाए गये हैं। वह सहज भी उत्पन्न क्रम के पक्ष में चार प्रकार का है।

आनन्दं प्रथमं वीरं परमानन्दं योगिनी ।
सुरतानन्दं समस्तं तत्सुखोपायः सर्ववित् ॥ ३१ ॥

इसके तीन भेद इस प्रकार हैं - पहला आनन्द है जिसका स्वभाव वीर है। दूसरा परमानन्द है जो सम्पूर्ण है और सुखोपाय कहलाता है तथा वह सर्ववित् भी है।

आनन्देन सुखं किञ्चित् परमानन्दं ततोऽधिकम् ।
विरमेन विरागः स्यात् सहजानन्दं शेषतः ॥ ३२ ॥

आनन्द के द्वारा थोड़ा सा सुख होता है। परमानन्द में अधिक सुख है। विरम द्वारा वैराग्य होता है और सहजानन्द पूर्ण सुख का स्थान कहलाता है।

प्रथमं स्पर्शाकांक्षया द्वितीयं सुखवाञ्छया ।
तृतीयं रागनाशत्वाच्चतुर्थं तेन भाव्यते ॥ ३३ ॥

पहले क्षण = अवस्था में स्पर्श की आकांक्षा से सुख होता है। दूसरे में सुख की ही इच्छा होती है। तृतीय अवस्था में राग नष्ट हो जाता है और उसके बाद आनन्द मात्र शेष रह जाता है।

परमानन्दं भवं प्रोक्तं निर्वाणं च विरागतः ।
मध्यमानन्दमात्रं तु सहजमेभिर्विवर्जितम् ॥ ३४ ॥

परमानन्द को संसार कहा गया है। वैराग्य से निर्वाण की प्राप्ति होती है। वे दोनों से रहित मध्यम अवस्था ही आनन्द मात्र है वही सहज अवस्था है।

न रोगो न विरागश्च मध्यमं नोपलभ्यते ।
नात्र प्रज्ञा न चोपायः सम्यक्तत्त्वावबोधतः ॥ ३५ ॥

किन्तु सम्यक् तत्त्व के बोध होने से न राग, न विराग, न मध्य-सहज, न प्रज्ञा, न उपाय ही अवशेष रहता है।

नान्येन कथ्यते सहजं न कस्मिन्नपि लभ्यते ।
आत्मना ज्ञायते पुण्याद् गुरुपर्वोपसेवया ॥ ३६ ॥

सहज अवस्था का वर्णन कोई भी नहीं करता है। किसी से वह उपलब्ध नहीं होता। स्वयं अपने पुण्य और गुरु की सेवा से ही वह प्राप्त होता है।

हीनमध्यमोत्कृष्टान्येवान्यानि यानि तानि च ।
सर्वाण्येतानि समानीति द्रष्टव्यं तत्त्वभावनैः॥ ३७॥

वे जितने भी मार्ग बतलाए गये हैं वे सभी हीन, मध्य और उत्तम अधिकारी को लक्षित करके ही कहे गए हैं। परन्तु वे सभी समान हैं, तत्त्व दृष्टि में या तत्त्व विदों के लिए।

हीनं सूक्ष्मपदार्थं तु उत्कृष्टं भावमुच्यते ।
मध्यमं वर्जितं द्वाभ्यामन्यानीति षडिन्द्रियम् ॥ ३८॥

हीन सूक्ष्म पदार्थ है, उत्कृष्ट भी भाव ही है। मध्यम दोनों से रहित है। इन दोनों से पृथक् इन्द्रियाँ हैं।

स्थिरचलं यानि तानि सर्वाण्येतानीत्येवाहम् ।
समानि तुल्यचेष्टानि समरसैस्तत्त्वभावनैः ॥ ३९॥

स्थिर, चञ्चल जितने भी हैं सभी को मैंने ही बताया है। वे सब समान है। समान चेष्टायुक्त हैं। तत्त्व विदों के लिए समान हैं।

समं तुल्यमिति प्रोक्तं तस्य चक्रो रसः स्मृतः ।
समरसं त्वेकभावमेतेनार्थेन भण्यते ॥ ४० ॥

'सम' का अर्थ तुल्य और चक्र को रस कहा गया है। समरस एक भाव है इसी कारण से इसे समरस कहा जाता है।

मद्भवं हि जगत् सर्वं मद्भवं भुवनत्रयम् ।
मद्व्यापितमिदं सर्वं नान्यमयं दृष्टं जगत् ॥ ४१ ॥

समग्र जगत् मेरे से ही उत्पन्न हुआ है। तीनों भुवन भी मुझ से ही हुए हैं। मेरे द्वारा जगत् व्याप्त है। और दूसरा जगत् कहीं है ही नहीं।

एवं मत्वा तु वै योगी योऽभ्यासे सुसमाहितः ।
स सिध्यति न सन्देहो मन्दपुण्योऽपि मानवः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार के भावना से युक्त होकर जो योगी अभ्यास में लग जाता है वह सिद्ध हो जाता है भले ही वह बहुत कमपुण्य वाला ही क्यों न हो, इसमें सन्देह नहीं है।

खानपाने तथा स्नाने जाग्रत् सुप्तोऽपि चिन्तयेत् ।
सातत्यं तु ततो याति महामुद्राभिकांक्षकः ॥ ४३ ॥

महामुद्रा की सिद्धि के लिए भोजन-पान-स्नान, जाग्रत्-सुषुप्ति आदि सभी अवस्थाओं में इसी प्रकार निरन्तर चिन्तनशील होकर ही लगना चाहिए।

भाव्यते हि जगत्सर्वं मनसा यस्मान्न भाव्यते ।
सर्वधर्मपरिज्ञानं भावना नैव भावना ॥ ४४ ॥

सारे जगत् की भावना करनी चाहिए। किन्तु मन से वह भावित नहीं होता। सभी पदार्थों का परिज्ञान ही भावना है और अन्त में उससे भी मुक्त होना चाहिए।

स्थिरचलाश्च ये भावास्तृणगुल्मलतादयः ।
भाव्यन्ते वै परं तत्त्वमात्मभावस्वरूपकम् ॥ ४५ ॥

स्थिर और चञ्चल स्वभाव वाले तृण गुल्म लता पत्थर आदि भी भावित होते हैं किन्तु परम भाव तो आत्मभाव का चिन्तन ही है।

तेषामेकं परं नास्ति स्वसंवेद्यं महत् सुखम् ।
स्वसंवेद्या भवेत् सिद्धिः स्वसंवेद्या हि भावना ॥ ४६ ॥

उन सभी से पर है स्वसंवेदन, वही बड़ा सुख है। स्वसंवेदन से ही सिद्धि होती है या सिद्धि स्वसंवेद्य है, भावना भी स्वसंवेद्य कही गई है।

स्वसंवेद्यमयं कर्म बाधनात् कर्म जायते ।
स्वयं हर्ता स्वयं कर्ता स्वयं राजा स्वयं प्रभुः ॥ ४७ ॥

स्वसंवेद्यमय ही कर्म है उसके बन्धन से ही वास्तविक कर्म प्रादुर्भुत होता है। उसके बाद योगी स्वयं ही हर्ता, स्वयं कर्ता, स्वयं राजा और स्वयं प्रभु हो जाता है।

रागो द्वेषस्तथैवेर्ष्या मोहो मानस्तथैव च ।
सर्वे ते तत्पदे रम्ये कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ४८॥

राग, द्वेष, ईर्ष्या, मोह और मान आदि सभी गुण उस पद में स्थित होने पर सोलहवें भाग में भी उसकी समानता नहीं कर सकते।

धर्मोदयोद्भवं ज्ञानं खसमं सोपायान्वितम् ।
त्रैलोक्यं तत्र जातं हि प्रज्ञोपायस्वभावतः ॥ ४९ ॥

धर्म से उत्पन्न ज्ञान आकाश के समान अति व्यापक होता है। वही उपाय युक्त भी है। सारे लोक उसी में समाहित होते है क्योंकि प्रज्ञा और उपाय स्वभाव युक्त होने से।

शुक्राकारो भवेद् भगवान् तत्सुखं कामिनी स्मृतम् ।
एकानेकवियोगोऽसौ क्षणादेका परा रतिः ॥ ५० ॥

भगवान् – शुक्र वीर्य के आकार के हैं। उनका सुख ही कामिनी है। एक और अनेक वियोग भी यही है। एक क्षण के बाद उसमें रति है।

स्वसंवेद्यमिदं ज्ञानं वाक्पथातीतगोचरम् ।
अधिष्ठानक्रमो ह्येषः सर्वज्ञज्ञानतन्मयः ॥ ५१ ॥

यह ज्ञान स्वसंवेद्य है। वचन के द्वारा इसका वर्णन संभव नहीं है। यही अधिष्ठान क्रम है और सर्वज्ञ के ज्ञान का ज्ञान अथवा सर्वज्ञ का ज्ञान है।

पृथिव्यापश्च वायुश्च तेज आकाशमेव च ।
क्षणात् सर्वे न बाधन्ते स्वपरसंविद्वेदनम् ॥ ५२ ॥

पृथिवी, आप, वायु, तेज और आकाश आदि उस योगी को बाधित नहीं करते क्योंकि वह सभी को अपने में संवेदित करता है।

स्वर्गमर्त्यैश्च पातालैरेकमूर्तिर्भवेत् क्षणात् ।
स्वपरभागविकल्पेन बाधितुं नैव शक्यते ॥ ५३ ॥

स्वर्ग, मर्त्य, पाताल आदि उसके लिए एक जगह उपस्थित हो जाते हैं तत्काल ही, स्व और पररूप विकल्प इसे बाधित कभी भी नहीं कर सकते हैं।

समस्तवेदसिद्धान्तैः कर्मप्रसरणादिभिः ।
सिद्धिर्न स्याद् भवेच्छुद्धया पुनर्जन्म भवान्तरे ॥ ५४ ॥

समस्त वेदों के जो सिद्धान्त हैं जिनमें कर्म पर जोड़ दिया गया है, उनके द्वारा इस जन्म में, अन्य जन्मों में अनन्त कल्पों में भी यह सिद्धि नहीं हो सकती।

न च तेन विना सिद्धिरिह लोके परत्र च ।
न ज्ञातं येन हेवज्रं व्यर्थस्तस्य परिश्रमः ॥ ५५ ॥

उसके बिना इस लोक में और परलोक में भी सिद्धि संभव नहीं है। जिसने हेवज्र को नहीं जाना उसका परिश्रम व्यर्थ है।

नदीस्रोतः -प्रवाहेन दीपज्योतिः -प्रबन्धवत् ।
सततं तत्त्वयोगेन स्थातव्यमहोरात्रतः ॥ ५६ ॥

नदी के जल के प्रवाह और दीपक के लौ के तरह ही निरन्तर दिन और रात में भी तत्त्व योग में स्थित रहना चाहिए।

योगिनीचक्रनामक महायोगिनी अष्टम मेलापक पटल पूर्ण हुआ ।

विशुद्धिपटलो नवमः

अतः परं विशुद्धिपटलं व्याख्यास्यामः –
सर्वेषां खलु वस्तूनां विशुद्धिस्तथता स्मृता ।
पश्चादेकैकभेदेन देवतानां तु कथ्यते ॥ १ ॥

अब इसके बाद विशुद्धिपटल की व्याख्या करेंगे – सभी वस्तु-पदार्थों की विशुद्धि तथता कहलाती है। अर्थात् तथता ही विशुद्धि है। बाद में प्रत्येक देवताओं का भेद बतलायेंगे।

षडिन्द्रियं पञ्चस्कन्धं षडायतनं पञ्चभूतम् ।
स्वभावेन विशुद्धमप्यज्ञानक्लेशैरावृतम् ॥ २ ॥

छह इन्द्रियाँ, पाँच स्कन्ध, षडायतन, पञ्चमहाभूत वे सब स्वभाव से ही विशुद्ध होने पर भी अज्ञान रूप क्लेश द्वारा घिरे हुए हैं।

स्वसंवेद्यात्मिका शुद्धिर्नानशुद्धया विमुयते ।
विषयशुद्धभावत्वात् स्वसंवेद्यं परं सुखम् ॥ ३ ॥

स्वसंवेदन रूपी जो शुद्धि है वह भी अशुद्ध से पूर्ण मुक्त नहीं है। किन्तु विषय शुद्ध होने से स्वसंवेद्य परमसुख कहलाता है।

रूपविषयादि येऽप्यन्ये प्रतिभासन्ते हि योगिनः ।
सर्वे ते शुद्धभावा हि यस्माद् बुद्धमयं जगत् ॥ ४ ॥

रूपादि विषय जो भी हैं वे योगियों के लिए प्रतिभासित होते हैं, वे सभी शुद्ध हैं योगियों की दृष्टि में इसीलिए सारा जगत् बुद्धमय है।

हे भगवन् के ते ऽविशुद्धाः? भगवानाह – रूपादयः।
कस्मात्? ग्राह्यग्राहकभावात्।
वज्रगर्भ आह – के ते ग्राह्यग्राहकाश्चेति ॥ ५॥

हे भगवन् वे कौन विशुद्ध हैं? भगवान् ने कहा – रूप आदि। क्यों? ग्राह्य और ग्राहक के अभाव होने से। वज्रगर्भ ने कहा – वे ग्राह्य और ग्राहक कौन हैं?

भगवानाह -

चक्षुषा गृह्यते रूपं शब्दः कर्णेन श्रूयते ।

गन्धं नासिकया वेत्ति जिह्वया स्वादनं विदुः ॥ ६ ॥

भगवान् ने कहा - रूप आँखों से गृहीत होता है। कानों से शब्द का श्रवण होता है। नाक से गन्ध का ज्ञान होता है। जीभ से स्वाद गृहीत होता है।

कायेन स्पृश्यते वस्तु मनः सुखादिमाप्नुते ।

सेवितव्या इमे सेव्या निर्विषीकृत्य शुद्धितः ॥ ७ ॥

पदार्थ शरीर से गृहीत होता है। सुख दुःख आदि मन से गृहीत होते हैं। वे सब सेवनीय हैं परन्तु निर्विषय दृष्टि से सेवा करने से वे शुद्ध होते हैं।

रूपस्कन्धे भवेद् वज्रा गौरी वेदनायां स्मृता ।

संज्ञायां वारियोगिनी संस्कारे वज्रडाकिनी ॥ ८ ॥

रूप स्कन्ध में वज्रा रहती है। वेदना की अधिष्ठातृ गौरी कहलाती है। नामों में वारियोगिनी और संस्कार में वज्रडाकिनी रहती है।

विज्ञानस्कन्धरूपेण स्थिता नैरात्म्ययोगिनी ।

सदा तासां विशुद्धया वै सिध्यन्ति तत्त्वयोगिनः ।

अध्यात्मपुटम् ॥ ९ ॥

विज्ञान स्कन्ध रूप से नैरात्म्य योगिनी स्थित है। हमेशा उनकी विशुद्धि से ही योगियों के लिए तत्त्व सिद्ध होते हैं। यही अध्यात्म पटल है।

पश्चाद्बाह्यपुटं वक्ष्ये अपरगौर्यादियोगिन्यः ।

ऐशान्यां पुक्कसी ख्याता अग्नौ शवरी कीर्तिता ।

नैर्ऋत्ये स्थाप्य चण्डालीं वायवे डोम्बिनी स्थिता ॥ १० ॥

बाद में बाह्य पुट के विषय में बतलाऊँगा जिसमें ऊपर गौरी आदि योगिनियों का वर्णन किया जायेगा। ईशान में पुक्कसी प्रसिद्ध है, आग्नेय में शबरी रहती है। नैऋत्य में चाण्डाली स्थापनीय है, वायव्य में डोम्बी रहती है।

इन्द्रे गौरी यमे चौरी वेताली वारुणे दिशि ।

कौवेरे घस्मरी चैव अधस्ताद् भूचरी स्मृता ॥ ११ ॥

इन्द्र दिशा में गौरी, यमलोक में चौरी, वरुणलोक में वेताली, कुबेरलोक में घस्मरी और नीचे भूचरी रहती है।

ऊर्ध्वं च खेचरी प्रोक्ता उत्पत्तिक्रमपक्षतः ।
भवनिर्वाणस्वभावेन स्थितावेतौ द्विदेवते ॥१२॥

उत्पत्ति क्रम के अनुसार ऊपर खेचरी रहती है। संसार निर्माण स्वभाव के कारण वे दोनों देवियाँ दो प्रकार से रहती हैं।

रूपे गौरी समाख्याता शब्दे चौरी प्रकीर्तिता ।
वेताली गन्धभागे च रसे घस्मरी कीर्तिता ॥१३॥

रूप में गौरी प्रसिद्ध है, शब्द में चौरी विख्यात है। गन्ध के भाग में वेताली है और रस में घस्मरी कार्तित है।

स्पर्शे च भूचरी ख्याता खेचरी धर्मधातुतः ।
सदा ह्यासां विशुद्धया तु सिध्यन्ति तत्त्वयोगिनः ॥१४ ॥

स्पर्श में भूचरी, धर्मधातु के योग से खेचरी कहलाती है। हमेशा इनकी शुद्धता से तत्त्वों में योगी सिद्ध होते हैं।

भुजानां शून्यता शुद्धिश्चरणा मारशुद्धितः ।
मुखान्यष्टविमोक्षेण नैत्रशुद्धिस्त्रिवज्रिणाम् ॥१५॥

हाथों की शुद्धि शून्यता ही है। पैर कामशुद्धि से शुद्ध होते हैं, अध्यात्मादि आठ शून्यता के बोध से अथवा आठ विमोक्षों से शुद्ध होते हैं। काय, वाक् और चित्त से नेत्र विशुद्ध होते हैं।

पुक्कसी ख्याता अब्धातुः शवरी स्मृता ।
तेजश्चण्डालिनी ज्ञेया वायुर्डोम्बी प्रकीर्तिता ॥१६ ॥

पृथिवी पुक्कसी कहलाती है। जल शबरी है। तेज चाण्डाली है, वायु डोम्बी है।

द्वेषा ख्यापिता नैरात्म्या रागा च वारियोगिनी ।
ईर्ष्या च वज्रडाकिनी पैशुन्यं गुप्तगौरिका ॥१७ ॥

द्वेष से नैरात्म्य स्थापित होता है। रागा वारयोगिनी कहलाती है। ईर्ष्या ही वज्रडाकिनी है। पिशुनता गुप्त गौरी कहलाती है।

मोह (हो) वज्रा तथाख्याता द्वेषादीनां तु शोधनम् ।
एतेन शोध्यते स्कन्धमुत्पत्तिक्रमपक्षतः ॥ १८ ॥

मोह ही वज्रा है। द्वेष आदि विशुद्ध किये जाते हैं। उत्पत्ति क्रम के मार्ग से विशुद्ध का मार्ग यही है।

येन तु येन बध्यते लोकस्तेन तु तेन तु बन्धनं मुञ्चेत् ।
लोको मुह्यति वेत्ति न तत्त्वं तत्त्वविवर्जितः सिद्धिं न लप्स्येत् ॥ १६॥

जिस जिस पदार्थ से लोक बन्धन में पड़ जाता है उसी उसी से बन्धन खोलना चाहिए। लोक मोहित होने से तत्त्व नहीं जानता और तत्त्ववर्जित लोक सिद्धि नहीं पा सकता।

तस्मात्

गन्ध न शब्द न रूपं नैव रस न च चित्तविशुद्धिः ।
स्पर्श न धर्म न सर्वविशुद्धया शुद्धसहाव जगो जग मन्ये ॥ २०॥

इसीलिए – न गन्ध, न रूप, न रस नहीं चित्त की शुद्धि, न स्पर्श, न धर्म किन्तु सभी विशुद्ध होने से निश्चित अद्वय प्रकाश मात्र होने से और जगन्मय होने से भी जगद् रूप होकर सभी को अपने आप में देखता हूँ।

विशुद्धि पटल पूर्ण हुआ ।

अभिषेकपटल दशम

अथातः संप्रवक्ष्यामि मण्डलस्य यथाक्रमम् ।
शिष्योऽभिषिच्यते येन विधिश्चापि प्रवक्ष्यते ॥१॥

अब यहाँ क्रमशः मण्डल के विषय में बताने जा रहा हूँ। जिसमें शिष्य का अभिषेक किया जाता है और विधि भी बताऊँगा।

वसुधां शोधयेद् योगी प्रथमं देवतात्मकः ।
हूं-वज्रीकृत्य यत्नेन पश्चान्मण्डलमालिखेत् ॥२॥

सबसे पहले पृथ्वी का शोधन करना चाहिए। उसके बाद देवतात्मक बीज हूँ कार के द्वारा यत्नपूर्वक मण्डल का लेखन करना चाहिए।

उद्याने विजने देशे बोधिसत्त्वगृहेषु च ।
मण्डलागारमध्ये च वर्तयेन्मण्डलं वरम् ॥३॥

उद्यान में, एकान्त में, बोधिसत्त्वों के कुटियों में अथवा मण्डल - जनपदों के बड़े घरों में श्रेष्ठ मण्डल का निर्माण करना चाहिए।

दिव्येन रजोलेखेन अथवा मध्यमेन तु ।
पञ्चरत्नमयैश्चूर्णैरथवा तण्डुलादिभिः ॥४॥

दिव्य रज रूपी मसी के द्वारा अथवा मध्यम प्रकार के पञ्चरत्नमय चूर्ण के मसी से अथवा चावलों से भी मण्डल बनाया जाना चाहिए।

त्रिहस्तं मण्डलं कार्यं त्रयाङ्गुष्ठाधिकं ततः ।
विद्या तत्र प्रवेष्टव्या दिव्या पञ्चकुलोद्भवा ॥५॥

तीन हाथ बराबर मापन का और तीन अङ्गुल बड़ा मण्डल होना चाहिए। उसमें पञ्चकुलों में उत्पन्न देवियों को स्थापित करना चाहिए।

अथवा या का यथालब्धा षोडशाब्दा तथैव च ।
तावद्धि सेव्यते मुद्रा यावच्छुक्रवती भवेत् ॥ ६॥

अथवा जो देवी उपलब्ध हों और षोडशी भी हो सकती है। साथ ही तब तक ही मुद्रा सेवनीय होती है जब तक वह शुक्र (बीज) से आपूरित होती है।

मुद्रायाश्च मुखं बद्धवा उपायस्य मुखं तथा ।
सेवया तत्र यद्भूतं शिष्यवक्त्रे निपातयेत् ॥ ७॥

मुद्रा का मुख बन्द करके उसी प्रकार उपाय का भी मुख बन्द करके सेवा के द्वारा जो वहाँ होता है उसे शिष्य के मुख में पातन कराना चाहिए।

कारितव्यं च तत्रैव समरसं शिष्यगोचरम् ।
स्वसंवेद्याद् भवेद् ज्ञानं स्वपरवित्तिवर्जितम् ॥ ८॥

वहीं पर शिष्य के लिए समरस की (आनन्द) स्थिति उत्पन्न करनी चाहिए। स्वसंवेदन से ही ज्ञान होगा जो स्व एवं पर ज्ञान रहित ही होता है।

खसमं विरजं शून्यं भावाभावात्मकं परम् ।
प्रज्ञोपायव्यतिमिश्रं रागारागविमिश्रितम् ॥ ६ ॥

आकाश के समान मल (रज) रहित जो शून्य है वही भाव भावात्मक भी है, साथ ही प्रज्ञा और उपाय आपस में मिश्रित होते हैं और रागाराग भी उसी अवस्था में हैं।

स एव प्राणिनां प्राणः स एव परमाक्षरः ।
सर्वव्यापी स एवासौ सर्वदेहव्यवस्थितः ॥ १० ॥

वही प्राणियों का प्राण है। वही परमाक्षर भी है। वही सर्वव्यापक भी है जो सभी देहों में व्यापक रूप से व्यवस्थित होकर रहता है।

स एवासौ महाप्राणः स एवासौ जगन्मयः ।
भावाभावौ तदुद्भूतौ अन्यानि यानि तानि च ॥ ११ ॥

वही यह महाप्राण है। वही यह जगन्मय है। भाव और अभाव इसी से उत्पन्न हैं और जो कुछ है वे भी इसी से हुए हैं।

सर्वं विज्ञानरूपं च पुरुषः पुराण ईश्वरः ।
आत्मा जीवं च सत्त्वं च कालः पुद्गल एव च ।
सर्वभावस्वभावोऽसौ मायारूपी च संस्थितः ॥१२॥

विज्ञान रूप सब कुछ, पुराण पुरूष, ईश्वर, आत्मा, जीव, सत्त्व, काल, पुद्गल भी गयी है। सभी भाव स्वभाव होने से मायारूप में यह स्थित हुआ है।

प्रथमानन्दमात्रं तु परमानन्दं द्विसंख्यतः ।
तृतीयं विरमाख्यं च चतुर्थं सहजं स्मृतम् ॥१३ ॥

पहला आनन्द मात्र है। दूसरा परमानन्द है। तृतीय विराम है और चतुर्थ सहज कहा गया है।

एवं श्रुत्वा तु वै सर्वे वज्रगर्भादयो बुधाः ।
परमविस्मयापन्ना मूर्छिताः पतितावनौ ॥ १४ ॥

यह सब सुनकर वज्र गर्भ आदि जो विद्वान् थे वे सभी अत्यन्त विस्मित हुए और मूर्छित होकर पृथ्वी में गिर गए ।

प्रथमानन्दं जगद्रूपं परमानन्दं जगत् तथा ।
विरमानन्दं जगच्चैव न विद्यते सहजं त्रिषु ॥१५॥

प्रथम आनन्द जगत् रूप है। परमानन्द भी जगत् ही है। विरमानन्द भी जगत् ही है अर्थात् वे सभी आनन्द जगत् के द्वारा बँधे हैं। किन्तु इन तीनों में सहज भाव सहज आनन्द नहीं है ऐसा।

भगवानाह हेवज्रः सर्वबुद्धैकविग्रहः ।
संशयापनयं दिव्यं वज्रगर्भस्य बोधये ॥ १६ ॥

भगवान् ने कहा हे वज्र ही सभी बुद्धों के विग्रह स्वरूप है। संशय को हटाने के लिए और दिव्यता के बोध के लिए वज्र गर्भ के बोध के लिए मैं बतलाता हूँ।

न रागो न विरागश्च मध्यमं नोपलभ्यते ।
त्रयाणां वर्जनादेव सहजं बोधिरुच्यते ॥ १७ ॥

जहाँ राग और विराग साथ ही उनके बीच में कुछ भी उपलब्ध नहीं होता है। इन तीनों के वर्जन के द्वारा ही सहज ज्ञानात्मक बोधि की उत्पत्ति होती है।

अथवा सर्वात्मकः सैवाथवा सर्वैर्विवर्जितः ।
विरमादौ स लक्ष्यत आनन्दत्रयवर्जितः ॥ १८ ॥

अथवा वही सहजानन्द सर्वात्मक है। वही सभी के द्वारा विवर्जित है - वह सहजानन्द ही है। विरमानन्द से पूर्व भी वह लक्षित होता है जिसमें वे तीन आनन्द नहीं होते।

प्रथमं मेघवद् भाति सिद्धे तु मायावद् भवेत् ।
सहसा स्वप्नवद् भाति स्वपिजाग्रदभेदवत् ॥ १६ ॥

सर्वप्रथम उसके सिद्धि होने से मेघ जैसा प्रतीत होता है। दूसरी अवस्था में माया (जादू) जैसा प्रतीत होता है। अचानक स्वप्न जैसा लगने लगता है। स्वप्न और जाग्रत् जैसा भी प्रतीत होने लगता है।

अभेदलक्षणासिद्धौ मुद्रायोगी तु सिध्यति ।
इत्याह मण्डलं शास्ता चतुष्कोणं समुज्ज्वलम् ॥ २० ॥

अभेदात्मक सहज भावना से सिद्धि के द्वारा योगी के लिए मुद्रा की सिद्धि होती है। यही मण्डल के विषय में शास्ता भगवान् ने कहा है, जो मण्डल उज्वल एवं चतुष्कोणयुक्त होता है।

चतुर्द्वारं महादीप्तं हारार्धहारभूषितम् ।
स्रक्चित्रचामरैर्युक्तमष्टस्तम्भोपशोभितम् ॥ २१ ॥

[मण्डल की विधि ही भगवान् बता रहे है -] वह चार द्वारोंवाला, उज्वल चमकीला, आधे हार से सुशोभित - अर्थात् अर्ध चन्द्र जैसी माला, चित्र एवं चामर आदि से सुशोभित और आठ खम्बों से सुशोभित होता है।

वज्रसूत्रैः समायुक्तं नानापुष्पोपशोभितम् ।
धूपं दीपं तथा गन्धमष्टकलशादिभिर्युतम् ॥ २२ ॥

वज्रसूत्र से मण्डित, अनेक पुष्पों से सुशोभित, धूप, दीप, एवं गन्ध और आठ कलशों के सुशोभित होना चाहिए।

ते च सपल्लवाग्राः स्युर्वस्त्राच्छादितकन्धराः ।
पञ्चरत्नपरिक्षिप्तं दद्याद् विजयं पूर्वतः ॥ २३ ॥

वे सभी कलश पत्रों से सुशोभित होने चाहिए । वस्त्रों से भी ढके होने चाहिए। पञ्चरत्न उसमें निक्षिप्त होते हैं उसे पूर्व की ओर रखना चाहिए।

नवेन सुनियुक्तेन सुप्रमाणेन चारुणा ।
सूत्रेण सूत्रयेत् प्राज्ञः स्वेष्टदेवतारूपतः ॥ २४ ॥

नये, अच्छे से बने हुए, प्रमाणित और सुन्दर तागे से बाँधना चाहिए। अपने इष्ट देवता के रूप में योगी को करना चाहिए।

चक्रेशस्य जपेल्लक्षं माण्डलेयस्य चायुतम् ।
पूर्वोक्तेनैव मन्त्रेण शोधयेद् धरणीं बुधः ॥ २५ ॥

चक्रेश का मन्त्र एक लाख जपना चाहिए। माण्डलेय का मन्त्र करोड़ जपना चाहिए। उसी पूर्वोक्त मन्त्र के द्वारा ही विद्वान् को धारणी का शोधन करना चाहिए।

बलिं च दापयेत् तत्र प्रागकारादिमन्त्रतः ।
रक्षां चैव यथादिष्टां यथा ध्याने तथात्र च॥ २६ ॥

[ॐ आः हूँ फट् स्वाहा] इस मन्त्र के जप से पहले ही बलि देना चाहिए। आदेशानुसार रक्षा का विधान करना चाहिए जैसा कि ध्यान के अवसर पर किया जाता है वैसा ही यहाँ पर भी करना चाहिए।

प्रकाशितास्तु ये सेका विधिवद् दद्यात् स्वमण्डले ।
पूजा चाभ्यर्चना चैव यथाख्याता तथात्र च ॥ २७ ॥

जो अभिषेक यहाँ बतलाए गए हैं उन्हें विधिपूर्वक मण्डल में अर्पित करना चाहिए। पूजा, अर्चना आदि जैसे बताये गए हैं उसी प्रकार करना चाहिए।

शुद्धं द्विपुटमालिख्य चक्रं गौर्यादीनां तथा ।
पूर्वेण लिखेत् कर्त्रिकां दक्षिणे पश्चिमे तथा ॥ २८॥

शुद्ध चक्र को दो बार लिखकर गौरी आदि को भी लिखकर कर्त्री को दक्षिण और पश्चिम में लिखना चाहिए।

उत्तरे चाग्निकोणे च नैर्ऋत्ये वायवे तथा ।
ऐशाने च यथाख्यातमधश्चोर्ध्वं तथा तथा ॥ २९ ॥

उत्तर, आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान तथा अध एवं ऊर्ध्व दिशाओं में भी उसी प्रकार लिखना चाहिए।

वज्रसत्त्वकृताटोपः कृतालीढश्च पादयोः ।
प्रविशेन्मण्डलाचार्यो द्विभुजहेवज्रयोगतः ॥ ३० ॥

वज्र सत्त्व का वेश बनाकर, दोनों पैरों के द्वारा खड़ा होकर, दो हाथों के द्वारा हेवज्र की मुद्रा बनाकर आचार्य मण्डल में प्रविष्ट होवें।

स्नातः शुचिः सुगन्धाङ्गो चित्राभरणभूषितः ।
हूं-हूं-कार-कृताटोपो ही-ही-कार-भयानकः ॥ ३१ ॥
पश्चात् तत्त्वं समाख्यातं विशुद्धं ज्ञानरूपिणम् ।
संसारव्यवदानेन नास्ति भेदो मनागपि ॥ ३२ ॥

सर्वप्रथम स्नान करके पवित्र होना चाहिए। सुगन्ध का लेपन शरीर में करने के बाद विचित्र आभूषण धारण के बाद हूँ हूँ कार का उच्चारण करने के बाद गंभीर रूप में ही ही का उच्चारण करने के बाद विशुद्ध तत्त्व में अवस्थित होना चाहिए, जो तत्त्व ज्ञानमय है। उसके बाद संसार से एकाकार होने पर दुःख और सुख में अभेद होने के कारण दोनों में कोई भेद नहीं रह जाता है।

परमरतौ न च भाव न भावक न च विग्रह न च ग्राह्य न ग्राहक ।
मांस न शोणित विष्ट न मूत्र न छर्द न मोह न शौचपवित्रम् ॥ ३३॥

परम रति अर्थात् आनन्द में अवस्थित होने पर न कोई भावक रह जाता है न भाव, न विग्रह, न ग्राह्य, न ग्राहक की, वहाँ न माँस, न शोणित, न विष्टा, न मूत्र, न काम, न मोह और पवित्र -अपवित्रका भाव भी नहीं रह जाता है।

राग न द्वेष न मोह न ईर्ष्या न च पैशुन्य न च मान न दृश्यम् ।
भाव न भावक मित्र न शत्रु निस्तरङ्ग सहजाख्यविचित्रम् ॥ ३४ ॥

न राग, न द्वेष, न मोह, न ईर्ष्या, न विवशता, न मान, न दृश्य, न भाव, न भावक, न मित्र, न शत्रु, वह तो सहज स्वरूप है जिसमें कुछ भी रङ्ग नहीं होता इसीलिए वह विचित्र अवस्था कहलाती है।

इत्याह वज्रगर्भाख्यः कस्माद् भूतात्मकं भवेत् ।
देहं स्वभावतः शुद्धमादावेवास्वभावकम् ॥ ३५॥

भगवान् ने वज्रगर्भ के स्वरूप को इस प्रकार बतलाया, फिर भूतात्मक जगत् कैसे होता है साथ ही शरीर स्वभाव से ही शुद्ध है किन्तु स्वाभाविक रूप से क्यों वह विशुद्ध कहलाता है।

तत्राह भगवान् वज्री डाकिनीनां सुखंददः ।
निस्तरङ्ग स्वरूपात्मा सर्वदेहव्यवस्थितः ॥ ३६॥

उस पर भगवान् वज्रधारी ने कहा जो डाकिनियों को सुख देने वाले थे, क्योंकि तरङ्ग रहित स्वसंवेद्य सर्वभूतात्मक रूप से देह व्यवस्थित होने के कारण ही वह विशुद्ध है। किन्तु सब लोग यह नहीं जानते ।

वज्रगर्भ आह – हे भगवन्, कस्मान्महाभौतिकस्कन्धः ॥ ३७॥

वज्रगर्भ ने कहा – हे भंगवन्! यह महाभौतिक स्कन्ध कैसे और क्यों होता है?

भगवानाह –

बोलकक्कोलयोगेन कुन्दुरुं कुरुते व्रती ।
स्पर्शात् काठिन्यधर्मेण पृथिवी तत्र जायते ॥ ३८॥

भगवान् ने कहा – बाल और काल के योग से कुन्दुर उत्पन्न होता है और उसके स्पर्श से, जो कठिन्य गुण युक्त होता है उसी से पृथिवी की उत्पत्ति होती है ।

बोधिचित्तद्रवाकारादब्धातोश्चैव संभवः ।
घर्षणाद् जायते तेजो गमनाद् वायुः प्रकीर्तितः ॥ ३९॥
सौख्यमाकाशधातुश्च पञ्चभिः परिवेष्टितः ।
तस्मात् सौख्यं न तत्त्वाख्यं महाभूतं यतः सुखम् ॥ ४०॥

बोधिचित्त के द्रव पिघलने से जल उत्पन्न होता है। उसी से घर्षण से तेज़ उत्पन्न होता है। गमन से वायु उत्पन्न होता है। सुख ही आकाश धातु कहलाता है। इस प्रकार पाँच भूतों से हम सभी परिवेष्टित होते हैं । इसी से यह सुख है। यह तत्त्व नहीं है क्योंकि महाभूत ही सुख रूप हैं ।

सहजात्यां यदुत्पन्नं सहजं तत् प्रकीर्तितम् ।
स्वभावं सहजं प्रोक्तं सर्वाकारैकसंवरम् ॥ ४१ ॥

प्रज्ञा और उपाय रूप सह जाति में उत्पन्न होने के कारण ही उसे सहजानन्द कहा गया है। वह स्वभाव ही सहज है जिसे सर्वाकार संवर भी कहा जाता है।

कृपोपायो भवेद् योगी मुद्रा हेतुवियोगतः ।
शून्यताकरुणाभिन्नं बोधिचित्तमिति स्मृतम् ॥ ४२ ॥

सभी प्राणी में कृपा करना ही उसका धर्म है इसी से वही उपाय भी है योगी के लिए, साथ ही उपकार करने के लिए कोई मुद्रा भी नही है और कारण भी किन्तु करुणा से अभिन्न शून्यता ही उसमें कारण है वही बोधिचित्त भी है।

न मन्त्रजापो न तपो न होमो न मण्डलेयं न च मण्डलं च ।
स मन्त्रजापः स तपः स होम-स्तन्मण्डलेयं तन्मण्डलं च ॥ ४३ ॥

उसे न मन्त्र जाप की आवश्यक्ता है, न तपस्या, न होम, न योगिनी आदि मण्ड्लवासी, या उनका मण्डल किन्तु उसके लिए कृपा ही होम, तपः, मन्त्र जाप ही मण्डल और उसके देवता भी हैं ।

समासतश्चित्तसमाजरूपी ॥ ४४ ॥

संक्षेप में कहा जाय तो बोधिचित्त होने से सभी जगत् के साथ एकाकार हो जाते हैं, स्वयं ही समाज हो जाता है, सबके कल्याण के लिए ही वह निरन्तर लगा रहता है ।

[क्लेश-विकल्प-निमित्तादि मलों का सीधे प्रक्षालन के कारण ही इसे अभिषेक पटल कहा गया है]

अभिषेक पटल पूर्ण हुआ।

वज्रगर्भाभिसम्बोधिदृष्टिपटल एकादशः

समाक्रूरा ललाटी च पातना कथिता सदा ।
वश्या वामाश्रिता दृष्टिः पुत्तली द्वौ च वामतः ॥१॥
आकृष्टिर्दक्षिणे भागे पुत्तली द्वौ हि चोर्ध्वतः ।
मध्यमा स्तम्भना दृष्टिर्द्वौ च नासाजडान्तरे ॥ २ ॥
पातना रेचकेनैव कुम्भकेन वशीकरेत् ।
पूरकेणैव त्वाकृष्टिः प्रशान्तकेन स्तम्भना ॥ ३ ॥
पातना स्निग्धवृक्षेषु वश्या पुष्पे प्रकीर्तिता ।
आकृष्टिर्वज्रवृक्षेषु स्तम्भना सचरे तृणे ॥ ४ ॥

[अपने अनुशासन या बुद्धशासन में उन्हें साधकों को अवतरित करने के लिए ही यह पटल प्रारम्भ किया जा रहा है।]

क्रोधरस से युक्त, सामने देखने वाली देवी पातना नाम से कही गई है। वाम अक्षि से देखने वाली देवी को वश्या कहा गया है। वे दोनों अपने दोनों आँखों के पुत्तलियों से देखती हैं। दोनों आँखों के पुत्तलियों से और ऊपर देखने वाली आकृष्टि कहलाती है। मध्यम अवस्था और दोनों नासापुट के ऊपर से दृष्टि देने वाली को स्तम्भना कहते हैं। रेचक प्राणायाम द्वारा पातना काम करती है। कुम्भक द्वारा वश्या, पूरक द्वारा आकृष्टि; निश्चल होकर स्तम्भना काम करती है। पातना घने वृक्षों में रहती है, पुष्पों में वश्या, वज्रवृक्षों में आकृष्टि और मुलायम तृणों में स्तम्भना रहती है।

षण्मासाभ्यासयोगेन सिद्ध्यति नात्र संशयः ।
भ्रान्तिरत्र न कर्तव्या अचिन्त्या हि बुद्धर्द्धयः ॥ ५॥

यह योग छः महीनों के अभ्यास से सिद्ध होता है इसमें कोई सन्देह नहीं हैं। और इसमें किसी प्रकार की भ्रान्ति भी नहीं करनी चाहिए क्योंकि बुद्धों की ऋद्धियाँ अचिन्त्य हैं।

साधयित्वा चतुर्दृष्टिं सत्त्वानि तारयेद् बुधः ।
मारणं नात्र कार्यं स्यात् समयभेदः परं भवेत् ॥ ६॥

उपर्युक्त चारों दृष्टियों की सिद्धि करने के बाद ही सारे प्राणियों को तारने के लिए योगी को लगना चाहिए। इसमें मारण का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे सिद्धान्त भेद उपस्थित हो जाता है।

सर्वाकार्यं तु कर्तव्यं हित्वा सत्त्वस्य वञ्चनाम् ।
सत्त्वापकारमात्रेण मुद्रासिद्धिर्न लभ्यते ॥ ७ ॥

प्राणियों की वञ्चना को छोड़कर और सभी कार्य करने चाहिए। प्राणियों के अपकार करने से मुद्रासिद्धि नहीं होती है।

समयं भक्षयेत्तत्र प्रदीप्यन्तं समाहितः ।
नादिं गादिं तथा हादिमन्तश्वमादिश्वं च वा ॥ ८ ॥

योग में अवस्थित होकर सिद्धान्त का भक्षण करना चाहिए। नादि, गादि, हादि, अन्तश्व आदि को छोड़कर ही साधकों को समाहित चित्त होना चाहिए।

पञ्चामृतं तथा भक्ष्यं हेवज्रे सिद्धिहेतुना ।
सप्तावर्तं ततो लक्षेत् हेवज्रोक्तैस्तु लक्षणैः ॥ ९ ॥

हे वज्र में सिद्धि चाहने वाले योगी को पञ्चामृत का भक्षण करना चाहिए। उसके बाद मनुष्य जन्म का अन्तिम जन्म-लक्ष्य-बोधि के लिए हे वज्र में कहे हुए उपायों से लगना चाहिए।

सप्तावर्ते भवेत् सिद्धिर्विरमानन्ददूषकी ।
सुस्वरञ्चक्षुष्मच्चैव गन्धकायं महावपुः ॥ १० ॥

सप्तावर्त - अर्थात् अन्तिम मनुष्य जन्म में सिद्धि होती है उसका नाम है - विरमानन्द दूषकी। सुस्वर एवं दिव्य चक्षु उद्घाटित होता है और शरीर सुगन्धित एवं महान् हो जाता है।

सप्तच्छाया भवेत् तस्य दृष्ट्वा योगी तु लक्षयेत् ।
तस्य प्राशितमात्रेण खेचरत्वं भवेत् क्षणात् ॥ ११ ॥

उसकी सात प्रकार की छाया होती है। योगी उसे देखकर उसे जान जाता है उसके सूँघने मात्र से वह खेचरी में प्रविष्ट हो जाता है।

अथ कुरुकुल्लायाः साधनं वक्ष्ये येन सर्वसत्त्वानि वशं यान्ति ।
संक्षिप्तं पूर्वमुद्दिष्टं विस्तरेण कल्पद्वादशैः ॥१२ ॥

अब कुरुकुल्ला की साधना बतलाऊँगा, जिससे सभी प्राणी वशीभूत हो जाते हैं। संक्षेप में पहले कहा गया है विस्तारपूर्वक द्वादश कल्प में कहा जाएगा।

ह्रीः-कारसम्भवा देवी रक्तवर्णा चतुर्भुजा ।
इषुकार्मुकहस्ता च उत्पलाङ्कुशधारिणी ॥१३ ॥

'ह्रीः' कार से उत्पन्न ये देवी हैं। रक्त वर्ण और चार हाथ हैं। शर और धनु हाथ में धारण करती हैं। उत्पल-कमल और अङ्कुश भी अन्य दो हाथों में धारण करती हैं।

अस्या भावनामात्रेण त्रैलोक्यं वशमानयेत् ।
लक्षेणैकेन राजानः प्रजालोकोऽयुतेन च ॥१४ ॥

इसकी भावना मात्र से तीनों लोक वश में हो जाता है। एक क्षण में सारे राजा वशीभूत हो जाते हैं। तत्काल ही सारी प्रजा भी वश में हो जाती है।

पशुयक्षादयः कोट्या सप्तलक्षेण चासुराः ।
लक्षद्वयेन देवाश्च शतेनैकेन मन्त्रिणः ॥१५ ॥

पशु, यक्ष आदि कोटि जप से, सात लाख से असुर, दो लाख से देवता और एक सौ से साधक भी वश में हो जाते हैं।

[वज्र - वज्रधर, उसका गर्भ-हृदय, उसे प्रकाशित करने वाला पटल होने से भी इसे वज्रगर्भाभिसम्बोधि पटल कहा गया है।]

एकादश दृष्टि पटल पूर्ण हुआ।
प्रथम कल्पराज परिपूर्ण हो गया।

द्वितीय कल्प

द्वितीयकल्पराजे होमनिर्णयप्रतिष्ठापटलः प्रथमः

अथ वज्रगर्भ आह –

देशयन्तु यथान्यायं प्रतिष्ठालक्षणं शुभम् ।
भगवान् वज्रसारात्मा सर्वबुद्धैकसङ्ग्रहः ॥ १ ॥

अब (फिर) वज्रगर्भ ने पूछा – वज्रों के सारस्वरूप, सभी बुद्धों के एकात्मक भगवान् हमें यथाशास्त्र (जैसा शास्त्रों में है) शुभ प्रतिष्ठा लक्षण का उपदेश करें।

भगवानाह –

होमं कृत्वा यथाप्रोक्तं वर्तयित्वा तु मण्डलम् ।
प्रदोषे संस्करेत् प्रतिमां कृत्वाधिवासनादिकम् ॥ २ ॥

भगवान् ने कहा – विधिपूर्व हवन करने के बाद, मण्डल बनाकर सन्ध्याकाल में प्रतिमा का संस्कार करना चाहिए और अधिवास–उपवास आदि भी करना चाहिए।

गगनस्थान् सर्वबुद्धान् प्रतिमाहृदि वेशयेत् ।
स्वेष्टदेवतासंयोगी प्रत्यक्षमन्त्रपारगः ॥ ३ ॥

आकाश में रहने वाले सभी बुद्धों के प्रतिमा के हृदय में आवाहित करके रखना चाहिए। अपने इष्ट देवता के साथ संयोग कराने वाले प्रत्यक्ष मन्त्रों का जप करना चाहिए।

ओं वज्रपुष्पे आः हूँ स्वाहा । ओं वज्रधूपे आः हूँ स्वाहा । ओं वज्रदीपे आः हूँ स्वाहा । ओं वज्रगन्धे आः हूँ स्वाहा । ओं वज्रनैवेद्ये आः हूँ स्वाहा ॥ ४ ॥

[वे मन्त्र ये हैं –] ऊँ वज्रपुष्पे आः हूँ स्वाहा। ऊँ वज्रधूपे आः हूँ स्वाहा। ऊँ वज्रदीपे आः हूँ स्वाहा । ऊँ वज्रगन्धे आः हूँ स्वाहा । ऊँ वज्रनैवेद्ये आः हूँ स्वाहा ।

नाना हूंकारनिष्पन्नान् पुष्पाद्यांस्तु प्रढौकयेत् ।
अर्घपाद्यादिकं प्राग्वत् पूर्वतन्त्रविधिक्रमैः ॥ ५ ॥

अनेक हूँकार से निकले हुए पुष्प आदि चढ़ाने चाहिए। उसी प्रकार पाद्य अर्घ्य आदि भी पहले के तरह ही विधि पूर्वक चढ़ाना चाहिए ।

शान्तिके वर्तुलं कुण्डं चतुरस्त्रं तु पौष्टिके ।
त्रिकोणं मारणे प्रोक्तं शेषानत्रैव साधयेत् ॥ ६ ॥

शान्ति होम के अवसर में वर्तुल कुण्ड बनायें और पुष्टि होम के लिए चार कोना वाला हो, मारण-कृत्य के लिए त्रिकोणात्मक होना चाहिए और अन्यों के लिए यथेच्छा से करना चाहिए ।

एकहस्तार्धहस्तं वा ऽधोर्ध्वे तु शान्तिकं भवेत् ।
द्विहस्तमेकहस्तं च अधोर्ध्वे पौष्टिकं मतम् ॥ ७ ॥

एक हाथ, आधा हाथ, ऊपर और नीचे होने चाहिए। यह शान्ति कर्म होम के लिए और पौष्टिक के लिए – दो हाथ या एक हाथ गहराई काफी है।

विंशत्यङ्गुलमर्धं च अधोर्ध्वे मारणं भवेत् ।
शुक्रवर्णं भवेच्छान्तौ पीतं तु पौष्टिके तथा ॥ ८ ॥

बीस अंगुल नीचे और १० अंगुल ऊपर यह मारण के लिए कुण्ड का परिमाण है। सफेद वर्ण वाला शान्ति और पीला वर्ण पौष्टिक के लिए है।

मारणे कृष्णवर्णञ्च वश्ये रक्तं प्रकीर्तितम् ।
यथा वश्ये तथा कृष्टौ द्वेषादौ यथा मारणे ॥ ९ ॥

मारण में कृष्णवर्ण, वक्ष्य में रक्त वर्ण कहा गया है। आकर्षण में भी वश्य के तरह ही होगा, द्वेष में मारण जैसा ही होना चाहिए।

तिलं शान्तौ दधि पुष्टौ मारणे कण्ठकं तथा ।
द्वेषादौ कण्ठकं प्रोक्तं वश्याकृष्टौ चोत्पलम् ॥ १० ॥

शान्ति हवन में तिलों से हवन होना है, पुष्टि में दही, मारण में काँटों से हवन और द्वेष आदि में भी काँटे ही चाहिए, वशीकरण में कमल के दाने हवन करने चाहिए।

ओं अग्नये महातेजः सर्वकामप्रसाधक ।
कारुण्यकृतसत्त्वार्थ अस्मिन् सन्निहितो भव ।
अग्न्यावाहनमन्त्रः ॥११ ॥

[इसके बाद अग्नि का आवाहन करें इस प्रकार -] ॐ हे अग्नि! हे महातेजस्वी, सभी इच्छाओं को पूरण करने वाले ! करुणा से सभी प्राणियों का उद्धार करने वाले आप कृपया इस कुण्ड में समाहित हो जायें। यही अग्नि आवाहन मन्त्र है।

त्वं देवि साक्षीभूतासि हेवज्रक्रोधपूजिते ।
नानारत्नधरि धात्र्यमुकोऽहं मण्डलं लिखे ॥१२॥

हे देवी ! तुम ही सभी कर्मों की साक्षीभूत हो। और वज्र के कोप के द्वारा पूजित भी हो। अनेक रत्नों को धारण करने वाली भी हो मैं (अपना नाम) यहाँ यह मण्डल बना रहा हूँ।

स्वार्थञ्चैव परार्थञ्च साधितुं गच्छ हव्यभुक् ।
आगमिष्यसि यथाकाले सर्वसिद्धिं कुरुष्व मे ।
अग्निसन्तोषणमन्त्रः ॥१३ ॥

हे अग्नि स्वार्थ और परार्थ की सिद्धि के लिए आप (इस समय) प्रस्थान करें, उचित काल में फिर आप अवश्य ही आयेंगे। मेरी सर्वसिद्धि आप करें। यह अग्नि को तुष्ट करने का मन्त्र है।

ओं जः हूं वं हाः खं रं अर्घमन्त्रः । ओं नी री हूं खः पाद्यमन्त्रः ।
ओं ध्वं ध्वं ध्वं नैवेद्यमन्त्रः ॥१४ ॥

ॐ जः हूँ वं हाः खं रं - यह अग्नि के लिए अर्घ्य मन्त्र है। ॐ नी री हूँ खः - यह अग्नि के लिए पाद्य मन्त्र है। ॐ ध्वं ध्वं ध्वं - यह अग्नि के लिए नैवेद्य मन्त्र है।

द्वितीय कल्पराज में प्रथम होम निर्णय पटल पूर्ण हुआ।

सिद्धिनिर्णयो द्वितीयपटलः

वज्रगर्भ आह –

गगनवत् सर्वधर्मेषु सागरे तुम्बिका यथा ।
सत्त्वाः कथं प्रसिध्यन्ति स्वेष्टदेवतारूपतः ॥१ ॥

वज्र गर्भ ने पूछा – [हे भगवन्] सारे पदार्थ आकाश सदृश हैं उसमें प्राणी सागर में [छोटा पात्र] तुम्बी के तरह हैं कैसे वे सब अपने इष्ट में सिद्धि प्राप्त करेंगे [मुझे सन्देह हो रहा है] ।

भगवानाह –

नैरात्म्यायोगयुक्तात्माऽथवा हेरुकयोगतः ।
क्षणमप्यन्यचित्तः सन्न तिष्ठेत् सिद्धिकांक्षकः ॥ २ ॥

भगवान् ने कहा – नैरात्म्य योग में अपने आप को पूर्ण रूप से समाहित करके अथवा हेरुक योग के द्वारा एक क्षण के लिए भी चित्त को अन्यत्र न लगाकर सिद्धिकांक्षी को रहना चाहिए।

प्रथमाभ्यासकालस्य स्थानं वै कल्पितं शुभम् ।
यत्रस्थः सिद्ध्यते मन्त्री एकचित्तः समाहितः ॥ ३ ॥

प्रथम अभ्यास के लिए अत्यन्त शुभ स्थान ठीक करना चाहिए। जहाँ बैठकर मन्त्र जप करने वाला समाहित चित्त होकर सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

स्वगृहेषु निशाकाले सिद्धोऽहमिति चेतसा ।
भावयेद् योगिनीं प्राज्ञोऽथवा श्रीहेरुकाकृतिम् ॥ ४ ॥

अपने घर में रात में मैं सिद्ध हूँ ऐसी भावना मन से ही करनी चाहिए और योगिनी की भावना करनी चाहिए। अथवा भगवान् हेरुक की आकृति का ध्यान करें।

अङ्घ्रिं प्रक्षालयन् भुञ्जनाचमन् पूगं भक्षयन् ।
चन्दनैर्हस्तं मर्दयन् कौपिनैश्छादयन् कटिम् ॥ ५ ॥
निःसरन् भाषयन् भाषां गच्छन् तिष्ठन् रुषन् हसन् ।
भगवतीं सेवयेत् प्राज्ञो योगिनीं भावयेद् व्रती ॥ ६ ॥

अपने पैरों के पखालते हुए, आचमन करते हुए अपूप का भक्षण करते हुए, हाथों में चन्दन का लेपन करते हुए, कटि भाग को कौपिन से आच्छादित करते हुए, जब योगी चले तो कुछ बड़बड़ाते रहना चाहिए कभी खड़े हो जाय, कभी रोये, कभी हँसे किन्तु भगवती की आराधना निरन्तर करते रहें, वह योगिनी ही है।

क्षणमप्यन्यरूपेण अविद्यादुष्टचेतसा ।
न स्थातव्यं बुधैर्यत्नात् सिद्ध्यर्थं सिद्धिकांक्षिभिः ॥ ७ ॥

एक क्षण के लिए भी अज्ञान को चित्त में नहीं लाना और इस प्रकार नहीं रहना की मैं कुछ नहीं जानता हूँ क्योंकि सिद्धि चाहने वाले को एकाग्र होना ही चाहिए।

वज्रगर्भ मयाख्यातं ध्यानं किल्बिषनाशनम् ।
सिद्ध्यर्थं कौतुकेनापि पक्षमेकं परिक्षेथाः ॥ ८ ॥

हे वज्रगर्भ मैंने समग्र पापों का नाशक ध्यान विधि बतला दिया है। सिद्धि के लिए यही विधि है जिसे विश्वास न हो उसे किसी एक पक्ष को लेकर परीक्षण कर लेना चाहिए।

सर्वचिन्तां परित्यज्य देवतामूर्त्तिचेतसा ।
दिनमेकमविच्छिन्नं भावयित्वा परिक्षेथाः ॥ ९ ॥

सभी चिन्ताओं को छोड़कर देवता की मूर्ति का चित्त में ध्यान करके एक दिन अविच्छिन्न रूप से भावना-ध्यान करके परीक्षा कर लें ।

नान्योपायोऽस्ति संसारे स्वपरार्थप्रसिद्धये ।
सकृदभ्यासिता विद्या सद्यः प्रत्ययकारिणी ॥ १० ॥

संसार में स्व और परार्थ साधन के लिए कोई दूसरा उपाय नहीं है। एक बार भी अभ्यास की गई विद्या तत्काल फल देने वाली होती है।

भयोन्मादैस्तथा दुःखैः शोकपीडाद्युपद्रवैः ।
रागद्वेषमहामोहैः साधको नैव क्लिश्यते ॥ ११ ॥

साधक कभी भी – भय, उन्माद, दुःख, शोक, पीड़ा, उपद्रव, राग, द्वेष, मोह आदि से विचलित नहीं होता है।

एवं विमृष्यमाणा वै हिताहितफलोदयम् ।
कथं ते क्षणमप्येकं योगिनः सन्ति रौरवे ॥ १२ ॥

इस प्रकार से विचार विमर्श करने वाले और हित अहित रूप फल को जानने वाले योगि लोग कैसे रौरव में एक क्षण भी ठहर सकते हैं?

पञ्चानन्तर्यकारिणः प्राणिवधरताश्च ये ।
अपि तु ये जन्महीना ये मूर्खाः क्रूरकर्मिणः ॥ १३ ॥

पाँच प्रकार के निषिद्ध कर्म करने वाले, प्राणीवध में लगे हुए ही जन्म होकर भी जन्महीन हैं, वे ही मूर्ख और क्रूर कर्म करने वाले कहलाते हैं।

कुरूपा विकलगात्राश्च सिध्यन्ते तेऽपि चिन्तया ।
दशकुशलाभ्यासी च गुरुभक्तो जितेन्द्रियः ॥ १४ ॥
मानक्रोधविनिर्मुक्तः स तावत् सिद्धयते ध्रुवम् ।
सातत्याभ्यासयोगेन सिद्धिलब्धः समाहितः ॥ १५ ॥

साधक भले ही कुरूप हो, गात्र विकल हो किन्तु एक रस से निरन्तर दशकुशल कर्म के अभ्यासी, जितेन्द्रिय और गुरुमन्त्र में लगकर मान, क्रोध आदि से मुक्त, वह (साधक) निश्चय भी सिद्ध होता ही है। किन्तु निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता उसे रहती है।

मासमेकं चरेद् गुप्तं यावत् मुद्रा न लभ्यते ।
आदेशं लभते मन्त्री योगिनीभिरादिश्यते ॥ १६ ॥

एक महीने तक गुप्त रूप से उसे रहना चाहिए जब तक मुद्रा की उपलब्धि नहीं होती उसके बाद योगिनियाँ स्वयं ही उसे आदेश दे देती हैं – मार्ग निदर्शन करती हैं ।

गृहीत्वा अमुकीं मुद्रां सत्त्वार्थं कुरु वज्रधृक् ।
तां च प्राप्य विशालाक्षीं रूपयौवनमण्डिताम् ॥ १७ ॥

अमुक (किसी का नाम) मुद्रा को (स्त्री सहचारिणी) लेकर प्राणियों के कल्याणार्थ हे वज्रधृक् साधना करो और वह रूप यौवन युक्त विशालाक्षी को ले लो साधना के लिए ।

सिह्लकर्पूर-संयुक्तां बोधिचित्तेन संस्करेत् ।
दशकुशलादारभ्य तस्यां धर्मं प्रकाशयेत् ॥ १८ ॥

बोधिचित्त के द्वारा साधक को उस साधना सहयोगिनी मुद्रा का शील कर्पूर आदि से संस्कार करना चाहिए। दशकुशल-मूल आदि से आरम्भ करके उसमें (स्त्री में) धर्म का प्रकाशन (आधान) करना चाहिए।

देवतारूपचित्तञ्च समयं चैकचित्तताम् ।
मासमेकेन भाव्या सा भवेन्नैवात्र संशयः ॥ १९ ॥

उसमें देवता (योगिनी) रूप चित्त बनाना चाहिए साथ ही उसके हाथ एक चित्त - चित्तैकाकारता पूर्वक एक महीने तक उसके साथ साधना करनी चाहिए इसमें सन्देह न करें ।

वरलब्धा यतो नारी सर्वसंकल्पवर्जिता ।
अथवा चात्मनः शकत्या कृष्ट्वा मुद्रां प्रकल्पयेत् ॥ २० ॥

अपने आप उपलब्ध जो नारी है, जो सभी सङ्कल्पों से मुक्त हो ऐसी चाहिए अथवा स्वयं ही ऐसी उपयुक्त नारी का आकर्षण के द्वारा मुद्रा की कल्पना करनी चाहिए ।

देवासुरमनुष्येभ्यो यक्षेभ्यः किन्नरादपि ।
तां च गृह्य चरेच्चर्यामात्मनो धैर्यप्रत्ययात् ॥ २१ ॥

देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष और किन्नरों से भी आकर्षण करके धैर्य एवं विश्वास पूर्वक उस स्त्री के साथ चर्या करनी चाहिए।

न चर्या भोगतः प्रोक्ता या ख्याता भीमरूपिणी ।
स्वचित्तप्रत्यवेक्षाय स्थिरं किं वा चलं मनः ।
सततं देवतामूर्त्या स्थातव्यं योगिना यतः ॥ २२ ॥

यह चर्या भोग नहीं है। यह स्त्री भीमरूपिणी ही है ऐसा जान लेना चाहिए। अपने चित्त के स्थिति को देखने के लिए ही - क्या मेरा मन स्थिर है या चञ्चल है, अतएव देवता के समक्ष योगी को दृढता पूर्वक रहना चाहिए।

वज्रगर्भ आह -

नैरात्म्यायोगयुक्तेन मुद्रार्थं विशिष्यते कथम् ।
मुद्रया मुद्रया द्वाभ्यां मुद्रासिद्धिः कथं भवेत् ॥ २३ ॥

वज्रगर्भ ने पूछा - नैरात्म्य योग में लगे हुए योगी को सिद्धि में विशेषता क्या है? मुद्रा और मुद्रा ये दो मुद्राओं सो मुद्रासिद्धि कैसे होती है?

भगवानाह-

स्त्रीरूपं विहायान्यद् रूपं कुर्याद् भगवतः ।
स्तनं हित्वा भवेद् बोलं कक्कोलमध्यसंस्थितम् ॥ २४ ॥
तीरद्वयं भवेद् घण्टा किञ्जल्कं बोलकं भवेत् ।
शेषं रूपं महात्मनो हेरुकस्य महारतेः ॥ २५ ॥
हेरुकयोगस्य पुंसः पुंस्त्व-मायात्ययत्नतः ।
मुद्रासिद्धिर्भवेद् यस्माद् व्यक्तशक्तस्य योगिनः ॥ २६ ॥
उत्पत्तिप्रलयाभ्यां च प्रज्ञोपायो न बाध्यते ।
उपायः संभवो यस्माल्लयं प्रज्ञा भवान्तकी ॥ २७ ॥
तेन प्रलयं नास्यास्ति उत्पादो नैव तत्त्वतः ।
प्रलयाल्लीयते कश्चिल्लयाभावान् न च क्षयः ॥ २८ ॥
उत्पत्तिक्रमयोगेन प्रपञ्चं भावयेद् व्रती ।
प्रपञ्चं स्वप्नवत् कृत्वा प्रपञ्चैर्निष्प्रपञ्चयेत् ॥ २९ ॥
यथा माया यथा स्वप्नं यथा स्यादन्तराभवम् ।
तथैव मण्डलं भाति सातत्याभ्यासयोगतः ॥ ३० ॥

भगवान् ने कहा – स्त्रीरूप को छोड़कर (अर्थात् नैरात्म्य को) भगवान् के दूसरे रूप का ध्यान करें, स्तनों को छोड़कर (छाती को छोड़कर) पार्श्व भाग का ध्यान करना चाहिए । दोनों तीर ही घण्टा कहलाते हैं। नासिका ही बोलक कहलाती है। अन्य बचे हुए स्वरूप सभी भगवान् हेरुक के ही हैं जो महाज्ञान में अवस्थित हैं। हेरुक योग में लगे हुए पुरुष के अत्यधिक पुरुषत्व बिना किसी प्रयास के ही आ जाता है। उसमें पूर्णरूप से लगे हुए पुरुष की मुद्रा सिद्धि भी हो जाती है। उत्पत्ति और प्रलय के द्वारा प्रज्ञा और उपाय बाधित नहीं होते। जिससे उपाय सम्भव होता है ओर लय भी जहाँ से उत्पन्न होता है जिससे संसार समाप्त होता है। उससे तत्त्वतः इसका प्रयत्न नहीं होता। तत्त्व रूप से उत्पत्ति भी नहीं होती। क्योंकि प्रलय के द्वारा प्रलय ही समाप्त होता है और लय न होने से क्षय संभव नहीं है। उत्पत्ति क्रम द्वारा व्रतधारी को प्रपञ्च की भावना करनी चाहिए और प्रपञ्च को स्वप्नवत् मानकर प्रपञ्च से निस्प्रपञ्च की ओर जाना चाहिए। जैसी माया है वैसा ही स्वप्न भी है, वैसा ही अब भी है, वैसा ही मण्डल भी प्रतीत होता है – निरन्तर अभ्यास करने से।

महामुद्राभिषेकेषु यथाज्ञातं महत् सुखम् ।
तस्यैव तत्प्रभावः स्यान्मण्डलं नान्यसम्भवम् ॥ ३१ ॥

महामुद्रा के अभिषेक में जैसा महासुख प्राप्त होता है यह जाना गया है उसी का प्रभाव सर्वत्र होता है और मण्डल में भी वही है अन्यत्र यह दूसरे से संभव नहीं है।

सुखं कृष्णं सुखं पीतं सुखं रक्तं सुखं सितम् ।
सुखं श्यामं सुखं नीलं सुखं कृत्स्नं चराचरम् ॥ ३२ ॥

काला भी सुख ही है, पीला भी सुख है, रक्त और सफेद भी सुख है, हरा भी सुख है, नीला भी सुख है अर्थात् सारा चराचर सुखमय होता है योगी के लिए।

सुखं प्रज्ञा सुखोपायः सुखं कुन्दुरुजं तथा ।
सुखं भावः सुखाभावो वज्रसत्त्वः सुखस्मृतः ॥ ३३ ॥

प्रज्ञा भी सुख है उपाय भी सुख है सुख का आधार भी सुख ही है भाव और अभाव दोनों सुख हैं, वज्र सत्त्व भी सुख ही है।

वज्रगर्भ आह–

उत्पन्नक्रमयोगोऽयं तत्सुखं महासुखं मतम् ।

उत्पन्नभावनाहीनो उत्पत्त्या किं प्रयोजनम् ॥ ३४ ॥

वज्रगर्भ ने पूछा – हे भगवन् उतपन्न क्रम का यह योग है जहाँ का सुख भी महासुख होता है, किन्तु उत्पन्न भावना हीन जो भी है उसमें उत्पत्ति का क्या प्रयोजन हो सकता है।

भगवानाह– अहो,

श्रद्धावेगेन नष्टोऽयं महाबोधिसत्त्व इति ।

देहाभावे कुतः सौख्यं सौख्यं वक्तुं न शक्यते ।

व्याप्यव्यापकरूपेण सुखेन व्यापितं जगत् ॥ ३५ ॥

भगवान् ने कहा – आश्चर्य है! यह महान् बोधिसत्त्व अतिशय श्रद्धा के कारण ही संशय में फंस गया है। क्योंकि देह के अभाव में सुख कैसे संभव है और सुख को बताया भी तो नहीं जा सकता। व्याप्य और व्यापक के कारण सारा जगत् सुख से ही व्याप्त है।

यथा पुष्पाश्रितं गन्धं पुष्पाभावान्न गम्यते ।

तथा रूपाद्यभावेन सौख्यं नैवोपलभ्यते ॥ ३६ ॥

जैसे पुष्प के अभाव में गन्ध का ज्ञान नहीं होता क्योंकि पुष्प ही गन्ध का आधार होता है वैसा ही रूप रस आदि के अभाव में सुख उपलब्ध नहीं होता।

भावोऽहं नैव भावोऽहं बुद्धोऽहं वस्तुबोधनात् ।

मां न जानन्ति ये मूढाः कौसीद्योपहताश्च ये ॥ ३७ ॥

विहरेऽहं सुखावत्यां सद्वज्रयोषितो भगे ।

एकाराकृतिरूपे तु बुद्धरत्नकरण्डके ॥ ३८ ॥

व्याख्याताहम्हं धर्मः श्रोताहं सुगणैर्युतः ।

साध्योऽहं जगतः शास्ता लोकोऽहं लौकिकोऽप्यहम् ॥ ३९ ॥

सहजानन्दस्वभावोऽहं परमान्तं विरमादिकम् ।

तथा च प्रत्ययं पुत्र अन्धकारे प्रदीपवत् ॥ ४० ॥

द्वात्रिंशल्लक्षणी शास्ता अशीतिव्यञ्जनी प्रभुः ।

योषिद्भगे सुखावत्यां शुक्रनाम्ना व्यवस्थितः ॥ ४१ ॥

विना तेन न सौख्यं स्यात् सुखं हित्वा भवेन्न सः ।
सापेक्षमसमर्थत्वाद् देवतायोगतः सुखम् ॥ ४२ ॥
तस्माद् बुद्धो न भावः स्यादभावरूपोऽपि नैव सः ।
भुजमुखाकाररूपी चारूपी परमसौख्यतः ॥ ४३ ॥

मैं भाव हूँ, मैं अभाव हूँ, पदार्थ ज्ञान के कारण बुद्ध हूँ, जो अज्ञान में विलीन हैं वे मुझे जान ही नहीं सकते। अनन्त सुख से मैं विहार करता हूँ वह वज्रयोषित् ही है। एकरसरूप बुद्ध रत्नों में मैं निरन्तर रहता हूँ। मैं स्वयं धर्म व्याख्याता हूँ, स्वयं धर्म हूँ, अच्छे गुणों से युक्त श्रोता भी हूँ। मैं स्वयं साध्य हूँ, संसार का शास्ता हूँ, लोक और लौकिक दोनों मैं ही हूँ। सहज आनन्द भाव मैं ही हूँ, परम आनन्द और विराम मैं ही हूँ। मैं वैसे ही हूँ लोक के लिए जैसे अन्धकार में दीप हुआ करता है। ३२ लक्षणों से युक्त शास्ता हूँ। ८० व्यञ्जनों से युक्त मैं ही हूँ। स्त्रियों के भगों में वीर्य के रूप में रहने वाला भी मैं ही हूँ। उस शुक्र बीज के बिना सुख संभव नहीं होता। सुख के बिना वह भी संभव नहीं है। दोनों दोनों के सापेक्ष हैं। देवता योग से सुख और सुख से देवता होते हैं। इसीलिए बुद्ध भाव और अभाव दोनों नहीं हैं। मुख-हाथ आदि से युक्त भी बुद्ध हैं और अनन्त सौख्य युक्त होने से मुखादि से रहित भी हैं।

तस्मात् सहजं जगत् सर्वं सहजं स्वरूपमुच्यते ।
स्वरूपमेव निर्वाणं विशुद्धयाकारचेतसा ॥ ४४ ॥

इसीलिए सारा जगत् सहज सुख रूप है और जगत् तथा सहज में भेद नहीं है। वह सुख स्वरूप ही निर्वाण कहलाता है - विशुद्ध चित्र के द्वारा देखा जाता है।

देवतायोगरूपं तु जातमात्रे व्यवस्थितः ।
भुजमुखवर्णस्थानात् किं तु प्राकृतवासना ॥ ४५ ॥

देवताओं का जो योग या देवतायोग जन्म से शरीर में ही व्यवस्थित होता है - क्योंकि वर्ण-आकृति, हाथ पैर आदि तथा प्राकृतवासना से प्रतीत होता है।

येनैव विषखण्डेन म्रियन्ते सर्वजन्तवः।
तेनैव विषतत्त्वज्ञो विषेण स्फोटयेद् विषम् ॥ ४६ ॥

जिस विष से सारे प्राणी मर जाते हैं उसी विष खण्ड से विज्ञ उसी विष को समाप्त करता है।

यथा वातग्रही तस्य माषभक्ष्यं प्रदीयते।
वातेन हन्यते वातं विपरीतौषधिकल्पनात्।
भवः शुद्धो भवेनैव विकल्प-प्रतिकल्पतः ॥ ४७ ॥

जैसे वायुव्रत धारण करने वाला उसी वायु को भी भक्ष्य बना लेता है, और वायु से ही वायु का निरोध करता है क्योंकि विपरीत प्रयोग द्वारा औषधि का काम होता है। शुद्ध होने पर संसार ही संसार का निरोध करता है, विकल्प प्रतिविकल्प का नाश करता है।

कर्णे तोयं यथा विष्टं प्रतितोयेन कृष्यते।
तथा भवविकल्पोऽपि आकारैः शोध्यते खलु ॥ ४८ ॥

जैसे कानों में पानी घुस जाने पर ऊपर से पानी डालकर उसे निकाल दिया जाता है, वैसे ही सांसारिक विकल्पों का भी उन्हीं विकल्पों से शमन किया जाता है।

यथा पावकदग्धाश्च स्विद्यन्ते वह्निना पुनः।
तथा रागाग्निदग्धाश्च स्विद्यन्ते रागवह्निना ॥ ४९ ॥
येन येन हि बध्यन्ते जन्तवो रौद्रकर्मणा।
सोपायेन तु तेनैव मुच्यन्ते भवबन्धनात् ॥ ५० ॥
रागेन बध्यते लोको रागेनैव विमुच्यते।
विपरीतभावना ह्येषा न ज्ञाता बुद्धतीर्थिकैः ॥ ५१ ॥
कुन्दुरेषु भवेत् पञ्च पञ्चभूतस्वरूपतः।
एक एव महानन्दः पञ्चतां याति भेदनैः ॥ ५२ ॥

जैसे आग से जले हुए को फिर औषधि के लिए आग में ही सेकते हैं। वैसे ही राग से जले हुए के लिए राग ही औषधि है। प्राणी जिन-जिन रौद्र कर्मों से बन्धन में पड़ जाते हैं उन्हीं उपायों से ही भव बन्धन से मुक्त होते हैं। राग से संसार बन्धन में फँस जाता है, राग से ही मुक्त होता है। यह विपरीत

भावना ही औषधि है। तीर्थिकों ने और कतिपय बौद्धों ने भी इसे नहीं जाना है। सुख रूप आनन्द में ही पञ्च स्पर्शादिभाव होते हैं क्योंकि उसमें पञ्चभूतों के स्वभाव मौजुद हैं। एक ही महासुख भेदों के द्वारा पाँच भागों में बँट जाता है।

बोलकक्कोलयोगेन स्पशात् काठिन्यवासना ।
कठिनस्य मोहधर्मत्वान्मोहो वैरोचनो मतः ॥ ५३ ॥
बोधिचित्तं द्रवं यस्माद् द्रवमब्धातुकं मतम् ।
अपामक्षोभ्यरूपत्वाद् द्वेषो ह्यक्षोभ्य-नायकः ॥ ५४ ॥
द्वयोर्घर्षणसंयोगात् तेजो हि जायते सदा ।
रागोऽमितवज्रः स्याद्रागस्तेजसि संभवेत् ॥ ५५ ॥

बोल और कक्कोल के योग से स्पर्श होता है उसी से काठिन्य प्रकट होता है वही पृथ्वीधातु है। वही मोहधर्म धारण करता है इसी के अधिष्ठाता वे वैरोचन हैं। बोधि चित्त ही द्रव है उसी से पानी का प्रादुर्भाव हुआ है। पानी अक्षोभ्य स्वरूप हैं। अक्षोभ्य ही द्वेष के नायक हैं। इन दोनों पृथ्वी-जल के घर्षण से तेज उत्पन्न हुआ है। राग अमित वज्र हैं इसीलिए राग तेज में प्रादुर्भाव होता है।

कक्कोलकेषु यच्चित्तं तत् समीरणरूपकम् ।
ईर्ष्या ह्यमोघसिद्धिः स्यादमोघो वायुसंभवः ॥ ५६ ॥

पृथिवी धातु में जो चित्त अवस्थित रहता है वही वायु के रूप में परिणत हो जाता है। ईर्ष्या ही अमोघ सिद्धि हैं वे वायु के अधिष्ठाता हैं।

सुखं रागं भवेद् रक्तं रक्तिराकाशलक्षणम् ।
आकाशः पिशुनवज्रः पिशुनमाकाशसम्भवम् ॥ ५७ ॥

सुख ही राग है, वह (आसक्ति) स्वभाव वाला है। वही आकाश ही आसक्ति के कारण आकाश कहलाता है। वही पिशुन वज्र है। वह पिशुन वज्र आकाश से समुत्पन्न हुआ है।

एकमेव महच्चित्तं पञ्चरूपेण संस्थितम् ।
पञ्चकुलेषु संभवास्तत्रानेकसहस्त्रशः ॥ ५८ ॥
तस्मादेकस्वभावोऽसौ महासुखं शाश्वत्परम् ।
पञ्चतां याति भेदेन रागादिपञ्चचेतसा ॥ ५९ ॥

दशगङ्गानदी वालुकातुल्या एककुलेषु तथागतसङ्घाः ।
सङ्घकुलेषु ह्यनेककुलानि तेषु कुलेषु कुलानि शतानि ॥ ६० ॥
तानि च लक्षकुलानि महान्ति कोटिकुलानि बहूनि भवन्ति ।
तत्र कुलेषु चासंख्यकुलानि परमानन्दकुलोद्भवानि ॥ ६१ ॥

एक ही महाचित्र पाँच रूपों में अवस्थित है। और पाँच कुलों में अवस्थित है। उसी से अनन्त कुल उत्पन्न हुए हैं। इसीलिए वह महासुख एक ही स्वभाव वाला है। शाश्वत परम रहस्यमय है। वही भेदों से पाँच प्रकार का हो जाता है - रागादि पाँच चित्रों के कारण। दश गङ्गा नदी के बालुकाओं के समान एक कुल में तथागतों की संख्या होती है। सङ्घकुल में अनेक कुल होते हैं, उन कुलों में भी हजारों कुल होते हैं। वे लाखों कुल बड़े बड़े हैं उसी प्रकार बहुत कोटि कुल हैं। उनमें भी असंख्य कुल हैं वे सब परमानन्द (सहजानन्द) कुल से उत्पन्न हुए हैं।

द्वितीयकल्पराज में सिद्धिनिर्णय नामक द्वितीय पटल पूर्ण हुआ।

हेवज्रसर्वतन्त्रनिदान-सन्ध्याभाषा तृतीय पटलः

अथ वज्री सर्वतन्त्रनिदानं नामोपायं योगिनीनां कथयामास-

संवरं चाभिषेकं च सन्ध्याभाषां तथैव च ।
आनन्दक्षणभेदं च तथान्यं भोजनादिकम् ॥ १ ॥

अब इसके बाद वज्रधर ने हेवज्रतन्त्र का मूल कारण बोधिशासनरूप उपाय योगिनियों के लिए कहा - संवर, अभिषेक, सन्ध्याभाषा, आनन्दक्षणों का भेद और भोजन आदि का उपदेश करूँगा।

तत्र संवरमाह-

संवरं सर्वबुद्धानामेवंकारे प्रतिष्ठितम् ।
अभिषेकाज्ज्ञायते सम्यगेवंकारं महत्सुखम् ॥ २ ॥

[सर्वप्रथम] उस अवसर पर संवर के विषय में कहा - संवर = श्रेष्ठ सुख ही संवर है वह सभी बुद्धों का है 'एवं' कार में प्रतिष्ठित होता है। वह एवं कार रूप महासुख अभिषेक द्वारा ही जाना जा सकता है ।

अथ भगवन्तं वज्रसत्त्वं योगिन्य एवमाहुः-

एवंकारं किमुच्यते डाकिनीनान्तु संवरम् ।
देशयन्तु यथान्यायं भगवान् शास्ता जगद्गुरुः ॥ ३ ॥

इसके बाद भगवान् वज्रसत्त्व को योगिनियों ने ऐसा कहा - यह 'एवं' कार क्या है? डाकिनियों का संवर क्या है? कृपा करके जगद्गुरु, शास्ता भगवान् यथा शास्त्र हमें उपदेश करें।

भगवानाह-

एकाराकृति यद्दिव्यं मध्ये वं-कारभूषितम् ।
आलयः सर्वसौख्यानां बुद्धरत्नकरण्डकम् ॥ ४ ॥

भगवान् ने कहा - सबसे पहले 'ए' कार है वह परम दिव्य है उसके बाद मध्य में 'वं' कार रहता है। वही सभी सौख्यों का मूल स्थान है जो बुद्ध रत्नों से विभूषित है।

आनन्दास्तत्र जायन्ते क्षणभेदेन भेदिताः ।
क्षणज्ञानात् सुखज्ञानमेवंकारे प्रतिष्ठितम् ॥ ५ ॥

वहीं पर आनन्द उत्पन्न होते हैं, प्रतिक्षण के हिसाब से आनन्दों की संख्या होती है। इस प्रकार क्षण के ज्ञान से सुखों का ज्ञान होता है वह 'वं' कार में प्रतिष्ठित है।

विचित्रं च विपाकं च विमर्दो विलक्षणं तथा ।
चतुःक्षणसमागम्यमेवं जानन्ति योगिनः ॥ ६ ॥

वह विचित्र है, विपाक, विमर्द एवं विलक्षण कहलाता है। चार क्षणों के द्वारा बोधगम्य होता है यह योगियों के द्वारा जाना जाता है।

विचित्रं विविधं ख्यातमालिङ्गचुम्बनादिकम् ।
विपाकं तद्विपर्यासं सुखज्ञानस्य भुञ्जनम् ॥ ७ ॥

वह विचित्र एवं भिन्न भिन्न रूप से विख्यात है – आलिंगन-चुम्बन आदि। वही विपाक एवं उसका उल्टा सुख ज्ञान का भोजन कहलाता है।

विर्मदमालोचनं प्रोक्तं सुखं भुक्तं मयेति च ।
विलक्षणं त्रिभ्योऽन्यत्र रागारागविवर्जितम् ॥ ८ ॥

मर्दन ही आलोचना है और 'मैंने सुख का भोग किया है' ऐसा बोध होता है क्योंकि तीन क्षणों से भिन्न विलक्षण सुख है वह जहाँ राग और विराग नहीं होते।

विचित्रे प्रथमानन्दः परमानन्दो विपाकके ।
विरमानन्दो विमर्दे च सहजानन्दो विलक्षणे ॥ ९ ॥

विचित्र में प्रथम आनन्द-साधारण आनन्द रहता है। विपाक में परम आनन्द का उल्लास होता है। विमर्द में विरमानन्द रहता है और विलक्षण में सहजानन्द का प्रादुर्भाव होता है।

आचार्य-गुह्य-प्रज्ञा च चतुर्थं तत् पुनस्तथा ।
आनन्दाः क्रमशो ज्ञेयाश्चतुःसेचनसंख्यया ॥ १० ॥

आचार्य, गुह्याभिषेक, प्रज्ञा और सहजानन्द वे ही क्रमश आनन्द हैं इनकी संख्या चार है अभिषेकों के संख्या के आधार पर।

हसितशुद्धया त्वाचार्य ईक्षणे गुह्यकस्तथा ।
प्रज्ञा हि पाण्यावाप्तौ च तत् पुनर्द्वन्द्वतन्त्रके ॥ ११ ॥

हास के कारण होने वाला शुद्धि से आचार्य शुद्ध होते हैं, ईक्षण-दर्शन में गुह्यक कहलाते हैं। हाथों के प्राप्ति में प्रज्ञा और मैथुन अवस्था में आनन्द की शुद्धि होती है।

सेकं चतुर्विधं ख्यातं सत्त्वानां सिद्धिहेतवे ।
सिच्यते स्नाप्यतेऽनेनेति सेकस्तेनाभिधीयते ॥ १२ ॥

अभिषेक चार प्रकार का होता है प्राणियों-योगियों के सिद्धि के लिए। इसी से सेचन करना और स्नान करना कहा जाता है अतएव इसे सेक = अभिषेक कहा गया है।

पाणिभ्यां तु समालिङ्ग्य प्रज्ञां वै षोडशाब्दिकाम् ।
घण्टावज्रसमायोगादाचार्यसेचनं मतम् ॥ १३ ॥

दोनों हाथों से षोडश वर्षीय प्रज्ञारूपी स्त्री को आलिंगन करके घण्टा और वज्र के समागम द्वारा आचार्य द्वारा सेचन अभिषेक [वीर्य द्वाराभिषेक] करने के लिए कहा गया है।

चारुवक्त्रा विशालाक्षी रूपयौवनमण्डिता ।
ज्येष्ठानामिकाभ्यां च शिष्यवक्त्रे निपातयेत् ॥ १४ ॥

अच्छे सुन्दर मुख मण्डलवाली, विशाल नेत्रों वाली, रूप और यौवन से मण्डित, प्रज्ञा स्त्री के ज्येष्ठ और अनामिका अङ्गुलियों के द्वारा शिष्य के मुखों में पातन = अभिषेक करें ।

कारितव्यं तु तत्रैव समरसं शिष्यगोचरम् ।
प्रज्ञां पूजयेच्छास्ता अर्चयित्वा समर्पयेत् ॥ १५ ॥

शिष्य को आचार्य के द्वारा समरस के स्थिति में पहुंचाना चाहिये। शास्ता के द्वारा प्रज्ञा की पूजा करनी चाहिए और उनकी पूजा करके उस प्रज्ञा का समर्पण शिष्य को कर देवें ।

शास्ता ब्रूयात् महासत्त्व गृह्ण मुद्रां सुखावहाम् ।
ज्ञात्वा शिष्यं महद्भूतं निरीर्ष्यं क्रोधवर्जितम् ॥ १६ ॥

शास्ता को कहना चाहिए कि हे महासत्त्व! सुखकारक मुद्रा को ग्रहण करो और शिष्य के अद्भुत गुण, ईर्ष्या राहित्य एवं क्रोधहीनता को जानकर ही देना चाहिए ।

शास्ता तमाज्ञापयति कुन्दुरुं कुरु वज्रधृक् ।
शिष्यकृत्यं प्रवक्ष्याम्यभिषेकमनुनाययेद् ॥ १७ ॥

शास्ता उन्हें आज्ञा करते हैं कि – हे वज्रधृक् सुरत = मैथुन करो। उसके बाद शिष्य के कृत्य अभिषेक आदि का वर्णन करूँगा।

मुद्रायुक्तं गुरुं दृष्ट्वा स्तुतिपूजां करेद् यथा ।
हे भगवन् महाशान्त वज्रयोगैकतत्पर ॥ १८ ॥
मुद्राप्रसाधकाभेद्यवज्रयोगसमुद्भव ।
यथा यूयं महात्मानो ममापि कुरु तद् विभो ॥ १९ ॥

मुद्रा से युक्त गुरु को देखकर स्तुति और पूजा भी करें और [प्रार्थना करें] कहे – हे भगवन्! हे महाशान्त! वज्रयोग में आप सदा तत्पर रहने वाले प्रभो! मुद्रा का प्रसाधन-सिद्धि करने के कारण एवं अभेद्य वज्र योग से उत्पन्न होने वाले! जैसे आप हैं मुझे भी उसी ओर ले जाने की कृपा करें।

संसारपङ्कसङ्घाटे मग्नोऽहं त्राह्यशरणम् ।
मिष्टान्नपानखाद्यं च मदनं बलं महत्तरम् ॥ २० ॥

[हे प्रभो!] संसाररूपी कीचड़ में फंस गया हूँ, अशरण हूँ [कृपया] मेरी रक्षा करें। इस संसार में केवल मिष्ठान्न-भोजन-खाद्य, काम में संलिप्त आदि बलों से घिरा हुआ हूँ ।

वेद्यं माल्यं च घण्टाध्वजविलेपनैः ।
आभिः पूजादिभिः शिष्य पूजयेद् वज्रधारिणम् ॥ २१ ॥

धूप, नैवेद्य, माला, घण्टा-ध्वजा आदि के विलेपन के द्वारा वज्रधर भगवान् की पूजा शिष्य के द्वारा करनी चाहिए।

परमानन्दे तु संप्राप्ते नानात्ववर्जिते क्षणे ।
शास्ता ब्रूयात् महासत्त्व धारणीयं महत्सुखम् ॥ २२॥

परमानन्द के प्राप्त हो जाने पर उस क्षण में द्वैत नहीं रहता है। उसके बाद शास्ता कहते हैं कि - हे महासत्त्व! महासुख का धारण करो।

यावदा बोधिपर्यन्तं सत्त्वार्थं कुरु वज्रधृक् ।
इत्येवं वदते वज्री शिष्यं दीक्षाक्रियाचयम् ॥ २३॥

जब तक बोधि उपलब्ध नहीं होता तब तक के लिए गुरु शिष्य को उसके कर्तव्य का उपदेश करें।

एतदेव महाज्ञानं सर्वदेहे व्यवस्थितम् ।
अद्वयं द्वयरूपं च भावाभावात्मकं प्रभुम् ॥ २४ ॥

यही महाज्ञान है जो सभी शरीरों में व्यवस्थित है। वह ज्ञान अद्वयरूप है और भाव भावात्मक होने से द्वय रूप भी है।

स्थिरचलं व्याप्य संतिष्ठेत् मायारूपि च भाति च ।
मण्डलचक्राद्युपायेन सातत्यं याति निश्चयम् ॥ २५ ॥

वह स्थिर और चल दोनों को व्याप्त करके रहता है। माया रूप है और प्रतीत भी होता है और मण्डल चक्रादि उपाय द्वारा निरन्तर बना रहता है।

अथ सर्वयोगिनीनां भगिनीनां मृषित्वा वज्रगर्भो भगवन्तमेवमाह-

मण्डलचक्रं किमुच्येत सर्वबुद्धात्मकं पुरम् ।
देशयन्तु यथान्यायं भगवन्तो भ्रान्तिर्मेऽभूत् ॥ २६ ॥

अब सभी योगिनियों, भगिनियों को क्षमा करके वज्रगर्भ ने भगवान् को इस प्रकार पूछा - [हे भगवन्!] मण्डल चक्र क्या है? सभी बुद्धों का वह पुर या शरीर है। भगवान् उसकी देशना करें क्योंकि मैं उसमें भ्रान्त [सन्देहयुक्त] हो गया हूँ ।

भगवानाह-

मण्डलं सारमित्युक्तं बोधिचित्तं महत्सुखम् ।

आदानं तत् करोतीति मण्डलं मलनं मतम् ॥ २७ ॥

भगवान् ने कहा - सार ही मण्डल है। बोधिचित्त ही महासुख है। उसका आदान - ग्रह करना ही मण्डल है वही देवता भी है।

चक्रं निवहं खधात्वाख्यं विषयादीनां विशोधनम् ।

बोलकक्कोलयोगेन तस्य सौख्यं प्रतीयते ॥ २८ ॥

चक्र ही निवहन है, वही ख धातु - आकाश धातु कहा गया है, उसीसे विषयों का विशोधन होता है । पृथिवी धातु के साथ संयोग होने से सुख की प्रतीति होती है।

वज्रगर्भ आह-

केन समयेन स्थातव्यं केन संवरेणेति ।

भगवानाह-

प्राणिनश्च त्वया घात्या वक्तव्यं च मृषावचः ।

अदत्तं च त्वया ग्राह्यं सेवनं परयोषितः ॥ २९ ॥

एकचित्तं प्राणिवधं प्राणचित्तं यतो मतम् ।

लोकानुत्तारयिष्यामि मृषावादं च शब्दितम् ॥

योषिच्छुक्रमदत्तं च परदाराः स्वाभसुन्दरी ॥ ३० ॥

वज्रगर्भ ने कहा - [हे भगवन्] किस देवता-सिद्धान्त और सुख के साथ रहना चाहिए?

भगवान् ने कहा - तुम्हें प्राणियों का वध करना चाहिए। असत्य भाषण करना चाहिए। दूसरों के द्वारा बिना दिए ही चोरी करना चाहिए। दूसरों के स्त्रियों का ग्रहण करना चाहिए। प्राणी का वध ही एकचित्त है। क्योंकि वही प्राण चित्त कहलाता है। झूठ बोलने का अर्थ है शब्द प्रयोग । एक चित्त का अर्थ है चित्त मात्र का ज्ञान। वही यहाँ प्राणि वध है। इसलिए मृषावादियों का मैं उद्धार करता हूँ। योषित् स्त्रियों का रज ही अदत्त दान है। पर स्त्री का अर्थ है प्रज्ञा या महासुख में रति ।

अथ सर्वयोगिन्यो भगवन्तमेवमाहुः-
के पुनस्ते विषयाः कानीन्द्रियाणि किमायतनं कतमे स्कन्धाः ।
के पुनस्ते धातवः एषां कि स्वभावम् ॥ ३१ ॥

इसके बाद सभी योगिनियों ने भगवान् से पूछा - वे विषय कौन हैं? इन्द्रियाँ कौन हैं? आयातन क्या और स्कन्ध कितने हैं। धातु कौन से हैं। इनका क्या स्वभाव है?

भगवानाह-षड्विषयाः ।
रूप शब्दस्तथा गन्धो रस-स्पर्शस्तथैव च।
धर्मधातुस्वभावश्च षडेते विषया मताः ॥ ३२ ॥

भगवान् ने कहा - छह विषय हैं। रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श, धर्म धातु स्वभाव वे ही विषय कहे गए हैं।

इन्द्रियाणि च षट् ।
चक्षुः श्रोत्रं च घ्राणं च जिह्वा कायो मनस्तथा ।
मोहवज्रादिभिर्युक्ताः षडेतानीन्द्रियाणि च ॥ ३३ ॥

इन्द्रियाँ भी छह हैं। चक्षु, क्षोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और मन वे सब मोहवज्र आदि से युक्त होकर छह इन्द्रियाँ कहलाती हैं।

विषयवैषयिकाभ्यां च द्वादशायतनं भवेत् ।
पञ्चस्कन्धाश्च रूपाद्या विज्ञानान्ता महाकृप ॥ ३४ ॥
इन्द्रियं विषयं चैव इन्द्रियविज्ञानमेव च ।
धातवोऽष्टादशाख्याता योगिनीनां तु बोधये ॥ ३५ ॥
स्वभावमाद्यनुत्पन्नं न सत्यं न मृषा तथा ।
उदकचन्द्रोपमं सर्वं योगिन्यो जानतेच्छया ॥ ३६ ॥

विषय और उनके ग्राहकों के कारण १२ आयतन होते हैं। हे महाकृपालु रूपादि पञ्च स्कन्ध जो विज्ञान तक हैं। इन्द्रिय विषय और इन्द्रिय विज्ञान एवं अष्टादश धातु कहलाते हैं योगिनियों के ज्ञान के लिए मैंने कहा। यह स्वभाव पहले उत्पन्न नहीं हुआ था। इसीलिए न सत्य और न मृषा ही था। यह सब पानी में चन्द्र छाया के तरह ही है योगिनियों के जानकारी के लिए मैंने कहा है।

तद्यथा काण्डं च मथनीयं च पुरुषहस्तव्यायामं च प्रतीत्याकस्मादग्निरुपजायते। असावग्निर्न काण्डे तिष्ठति। न मथनीये न पुरुषहस्तव्यायामे। सर्वाकारतः परिगवेष्यमाणः, एकस्मिन्नपि नास्ति। स चाग्निर्न सत्यं न मृषा। एवं सर्वधर्मान् योगिन्यो मनसिकुरुत ॥ ३७ ॥

जैसा की अरणी मन्थन में दो काष्ठ खण्डों का घर्षण किया जाता है उसमें व्यक्ति के हाथों के व्यायाम द्वारा अग्नि की उत्पत्ति होती है। यह अग्नि अरणि में नही रहता है। मन्थन करने वाले व्यक्ति के हाथों में भी नहीं रहता। सभी तरह से खोजने पर भी एक जगह पर भी वह नहीं मिलता। वह अग्नि न सत्य है न मृषा ही। ऐसे ही सभी धर्म हैं ऐसा योगिनियों को जान लेना चाहिए ।

अथ नैरात्म्य योगिनीप्रमुखाः सर्ववज्रडाकिन्यः पञ्चामृतं गृहीत्वा समयद्रव्यं च भगवन्तं वज्रसत्त्वं पूजयन्ति। कुन्दुरुयोगेनानुरागयन्ति। पिबयन्ति च वज्रामृतरसम् ॥ ३८ ॥

इसके बाद नैरात्म्य प्रमुख योगिनियाँ जो वज्रडाकिनी आदि हैं, उन्होंने पञ्चामृत का पान किया उसके बाद समय द्रव्य रूप भगवान् वज्र सत्त्व की पूजा की। सुरत-सुख द्वारा परितुष्ट किया। उन्होंने भगवान् को वज्रामृत रस का पान भी कराया।

ततः पश्चाद् भगवांस्तुपटे सति अधिष्ठानं दर्शयति। भो भो वज्रडाकिन्यः मया गुप्तीकृतं तत्त्वं सर्वैर्बुद्धैर्नमस्कृतम् । वज्रपूजाप्रभावेन कथयामि श्रृणुतेच्छया ॥ ३९ ॥

उसके बाद भगवान् संतुष्ट होकर अधिष्ठान का दर्शन कराते हैं। [उन्होंने कहा] हे वज्र डाकिनियों! सभी बुद्धों द्वारा नमस्कृत जो तत्त्व है उसे मैंने छिपाकर रखा है। तुम्हारी वज्रपूजा के प्रभाव से मैं कहने जा रहा हूँ इच्छापूर्वक सुनो।

अथ उत्साहप्राप्ताः सर्वा देव्यो दक्षिणं जानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणम्य भगवतो भाषितं श्रृण्वन्ति ॥ ४० ॥

अब, इसके बाद उत्साहित सभी देवियों ने दक्षिण घुटना पृथिवी में रखकर जिधर भगवान् हैं उधर ही अञ्जली पूर्वक प्रणाम करके भगवान् के उपदेशों का श्रवण किया (करती हैं)।

भगवानाह-

खानं पानं यथाप्राप्तं गम्यागम्यं न वर्जयेत् ।
स्नानं शौचं न कुर्वीत ग्राम्यधर्मं न वर्जयेत् ॥ ४१ ॥

जैसा भोजन पान प्राप्त है और गम्य-अगम्य है उसे वैसा ही सेवन करना चाहिए। स्नान, शौच नहीं करना, तथा ग्राम्य धर्म नहीं छोड़ना चाहिए ।

मन्त्रं नैव जपेद् धीमान् ध्यानं नैवावलम्बयेत् ।
निद्रात्यागं न कुर्वीत नेन्द्रियाणां निवारणम् ॥ ४२ ॥
भक्षणीयं बलं सर्वं पञ्चवर्णं समाचरेत् ।
रमते सर्वयोषिता निर्विशङ्केन चेतसा ॥ ४३ ॥
मित्रस्नेहं न कुर्वीत द्विष्टे द्वेषं तथा न च ।
न वन्दयेदिमान् देवान् काष्ठपाषाणमृण्मयान् ।
सततं देवतामूर्त्या स्थातव्यं योगिना यतः॥ ४४ ॥
डोम्बचण्डालचर्मारहड्डिकाद्यान् तु दुःस्पृशान् ।
ब्रह्मक्षत्रिवैश्यशूद्राद्यानात्मदेहमिव स्पृशेत् ॥ ४५ ॥
पञ्चामृतं गुडं मद्यं विषं निम्बं प्रसूतजम् ।
अम्लमधुरकषायादि तिक्तलवणकटुकस्तथा ॥ ४६ ॥
पूतिसुरभि जलासृग् बोधिचित्तेन भक्षयेत् ।
नाभक्तं विद्यते किञ्चिदद्वयज्ञानचेतसा ॥ ४७ ॥
स्वयम्भूकुसुमं प्राप्य पद्मभाण्डे निवेशयेत् ।
श्लेष्मसिङ्घाणकानां तु मिश्रीकृत्य पिबेद् व्रती ॥ ४८ ॥
कौपीनं विश्ववर्णं च मृच्छारैर्भूषणं तथा ।
पुष्पं प्रेतालये प्राप्य बन्धयेन्मूर्द्धजं वरम् ॥ ४९ ॥

बुद्धिमान् व्यक्ति मन्त्र का जाप न करें। ध्यान की कोई आवश्यकता नहीं है। निद्रा का त्याग न करें। इन्द्रियों को न रोके। सभी भक्षणीय पदार्थ हैं वही बल भी है। पञ्च वर्णों में समाहित हो जाय। सभी स्त्रियों के साथ रमण करें। कोई शंका मन में नहीं होना चाहिए। मित्रों के साथ स्नेह न करें। द्वेष करने वाले के साथ द्वेष न करें। इन देवताओं की वन्दना न करें। क्योंकि वे काठ,

पत्थर और मिट्टी के बने हैं। योगियों को निरन्तर देव मूर्ति के साथ ही रहना चाहिए। डोम-चाण्डाल-चमार आदि जो स्पर्श अयोग्य हैं उन्हें भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अपने शरीर के तरह ही स्पर्श करें। पञ्चामृत, गुड़, मद्य, विष, निम्बु आदि और खट्टा-मधुर-काषाय आदि और तीता, लवण आदि साथ ही दुर्गन्धित-सुगन्धित आदि बोधिचित्त को खा लेना ही चाहिए। अद्वय ज्ञान में निमग्न ज्ञानी के लिए कुछ भी अभक्ष्य नहीं है। स्वयम्भूफूल पाकर पद्म के वर्तन में रखे और कफ-सिंघान आदि मिलाकर उसे पी जाय। साथ ही कौपीन, विश्ववज्र मच्छार भूषण, एवं पुष्प को प्रेतालय में ले जाकर अपने केशपाश को खोल देवें।

अथ वज्रगर्भ आह-

इन्द्रियाण्यविशुद्धानि षट्संख्ययाकृतानि वै।
शुद्धिः सर्वविषयस्य भगवता कथिता पुरा ॥ ५० ॥

इसके बाद वज्रगर्भ ने पूछा - सभी इन्द्रियाँ जो संख्या में छह हैं वे अशुद्ध हैं और उन सभी विषयों की शुद्धि भगवान् ने पहले ही कहा है।

भगवानाह-

चक्षुषो मोहवज्रा तु श्रोत्रयोर्द्वेषवज्रिका ।
घ्राणे मात्सर्यकी ख्याता वक्त्रे च रागवज्रिका ॥ ५१ ॥
स्पर्शे ईर्ष्यावज्रा च मनो नैरात्म्ययोगिनी ।
कवचमेभिर्महासत्त्व इन्द्रियाणां विशुद्धये ॥ ५२ ॥

भगवान् ने कहा - नेत्रों में मोह वज्रा, कानों में द्वेष वज्रा, घ्राण में मात्सर्य की ओर मुख में राग वज्रिका रहती हैं यह प्रसिद्ध है। स्पर्श में ईर्ष्या वज्रा है, मन में नैरात्म्य योगिनी है। इन सभी के द्वारा इन्द्रियों की रक्षा होती है और वे देवियाँ इन्द्रियों को विशुद्ध करती हैं। हे महा सत्त्व!

वज्रगर्भ उवाच-

सन्ध्याभाषं किमुच्येत भगवान् बोब्रूत निश्चितम् ।
योगिनीनां महासमयं श्रावकाद्यैर्न छिद्रितम् ॥ ५३ ॥
हसितं चेक्षणाभ्यां तु आलिङ्गं द्वन्द्वकैस्तथा ।
तन्त्रेणापि चतुर्णां च सन्ध्याभाषं न शब्दितम् ॥ ५४ ॥

वज्रगर्भ ने कहा - सन्ध्या भाषा क्या है? भगवान् कृपया बतावे। और योगिनियों का जो महाआनन्द है जिसे श्रावक आदि द्वारा नहीं जाना जा सका है। हँसना, दोनों आँखों से देखना, आलिंगन करना दोनों हाथों से, इस प्रकार इन चारों के विषय में सन्ध्याभाषा के द्वारा भी नहीं कहा गया है।

भगवानाह -

वक्ष्याम्यहं वज्रगर्भ श्रृणु त्वमेकचेतसा ।
सन्ध्याभाषं महाभाषं समयसंकेतविस्तरम् ॥ ५५ ॥
मदनं मद्यं बलं मांसं मलयजं मिलनं मतम् ।
गतिः खेटः शवः श्रायोऽस्थ्याभरणं निरंशुकम् ॥ ५६ ॥
आगतिः प्रेङ्खणं प्रोक्तं कृपीटं डमरुकं मतम् ।
अभव्यं दुन्दुरुं ख्यातं भव्यं कालिञ्जरं मतम् ॥ ५७ ॥

भगवान् ने कहा - हे वज्रगर्भ मैं बताता हूँ तुम एकचित्त होकर सुनो। सन्ध्याभाषा ही महाभाषा है सिद्धान्त-सुख का संकेत है जो अत्यन्त विशाल रूप में है। वही मदन - काम है, मद्य, बल, माँस, मलयपर्वत का चन्दन या वायु और महासुख कहा गया है साथ ही गति, खेट, शव, आश्रय अस्थि की माला और निरंकुश भी वही है। आगमन ही प्रेङ्खण है ऐसा कहा गया, कृपीट (माँस) ही डमरु, कहा गया है। अभव्य दुन्दुर है भव्य ही कालिञ्जर बताया गया है।

अस्पर्शं डिण्डिमं प्रोक्तं कपालं पद्मभाजनम् ।
भक्षं तृप्तिकरं ज्ञेयं व्यञ्जनं मालतीन्धनम् ॥ ५८ ॥
गूथं चतुःसमं प्रोक्तं मूत्रं कस्तूरिका स्मृता ।
स्वयम्भू सिह्लकं ज्ञेयं शुक्रं कर्पूरकं मतम् ॥ ५९ ॥

महामांसं सालिजं प्रोक्तं द्वीन्द्रिययोगं कुन्दुरुम् ।
वज्रं बोलकं ख्यातं पद्मं कक्कोलकं मतम् ॥ ६० ॥
कुलं पञ्चविधं ख्यातं वर्णभेदेन भेदितम् ।
सन्ध्याभाषत एवं स्युर्बुद्धाश्च पञ्चकौलिकाः ॥ ६१ ॥

अस्पर्श ही डिन्डिम है कपाल पद्म पात्र है। भक्ष्य तृप्तिकारक है ऐसा जानना चाहिए। व्यञ्जन मालती का इन्धन है। मल चार समान हैं मूत्र कस्तुरिका के समान कहा गया है। स्वयम्भू ही गुग्गल है शुक्र-वीर्य ही कर्पूरक है। मुर्दों का माँस ही शालीधान का चावल है। दो इन्द्रियों का (मैथुन) योग ही सुरत आनन्द है। वज्र ही बोलक है कमल कल्लोलक है। कुल पाँच प्रकार का है, वर्णों के भेद से भिन्न है। सन्ध्याभाषा द्वारा ऐसा 'एवं' संकेत रूप में कहा गया है वे सब बुद्ध पञ्च कौलिक हैं ऐसा बतलाया गया है।

डोम्बी वज्रकुली ख्याता नटी पद्मकुली तथा ।
चण्डाली रत्नकुली चैव द्विजा ताथागती मता ॥ ६२ ॥
रजकी कर्मकुली चैव एता मुद्राः सुसिद्धिदाः ।
आसां शुक्रं भवेद् वज्रं पूजयित्वा पिबेद् व्रती ॥ ६३ ॥
वज्रगर्भ महासत्त्व यन्मया कथितं त्वयि ।
तत् सर्वं सादरं ग्राह्यं सन्ध्याभाषं महाद्भुतम् ॥ ६४ ॥
योऽभिषिक्तोऽत्र हेवज्रे न वदेत् सन्ध्याभाषया ।
समयविद्रोहनं तस्य जायते नात्र संशयः॥ ६५ ॥
ईत्युपद्रवचौरैश्च ग्रहज्वर विषादिभिः।
म्रियतेऽसौ यदि बुद्धोऽपि सन्ध्याभाषान्न भाषयेत् ॥ ६६ ॥
स्वसमयविदां प्राप्य यदि न भाषेदिदं वचः ।
तदा क्षोभं प्रकुर्वन्ति योगिन्यश्चतुःपीठजाः ॥ ६७ ॥

वज्र कुली ही डोम्बी है। नटी पद्मकुली है। चाण्डाली रत्न कुली है द्विजा ताथागती कहलाती है। रजकी-धोबिनी और कर्म कुली वे सब मुद्रा सिद्धि कराने वाली हैं। दिन का शुक्र-बीज ही वज्र बन जाता है और इनकी पूजा करके व्रतधारी को पी लेना चाहिए। हे वज्र गर्भ, हे महा सत्त्व जो कुछ मैंने कहा है वह सब आदरपूर्वक तुम्हें ग्रहण करना चाहिए क्योंकि यह सब

सन्ध्याभाषा है अति अद्भुत भी है।

यहाँ जो अभिषेक का उपदेश किया गया है हे वज्र में, उसे सन्ध्याभाषा में नहीं कहना चाहिए। क्योंकि उससे महासुख में विरोध या सिद्धान्त भेद उत्पन्न हो जाता है इसमें सन्देह नहीं है। इसीलिए, उपद्रव, चौर्य, ग्रहप्रकोप, विषादिकों का प्रयोग आदि द्वारा वह मर जाता है यदि बुद्ध है तो भी ऐसा ही होगा इसीलिए यहाँ सन्ध्याभाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अपने सुख-सिद्धान्तों को जानने वालों से मिलकर यदि वे वचन ये नहीं बोलते हैं तब उनके प्रति चारों जीवों में रहने वाली योगिनियाँ क्षोभ उत्पन्न करती हैं।

द्वितीयकल्पराज में सन्ध्याभाषानामक तृतीय पटल पूर्ण हुआ।

हेवज्रसर्वतन्त्रमुद्रणपिण्डार्थो नाम चतुर्थः पटलः

अथ वज्रगर्भप्रमुखाः सर्वडाकिन्यः संशयप्राप्ता दौर्मनस्यप्राप्ता भगवन्तं वज्रसत्त्वमेवमाहुः। भगवान् संशयमपनयतु ॥ १ ॥

अब, इसके बाद, सभी योगिनियों-डाकिनियों को संशय - सन्देह हो गया साथ ही मन में विचित्र चिन्ता हुई इसीलिए उन्होंने भगवान् वज्रसत्त्व से कहा - हे भगवन् [आप कृपया] हमारे सन्देहों का निराकरण करें।

चर्यापटले यदाख्यातं गीतं नाट्यं च सिद्धिदम् ।
तत्र संदेहो मे वर्तते किं गीतं नाट्यं च किम् ॥ २ ॥

आपने चर्यापटल में जो कहा - गीत और नाट्य सिद्धिदायक हैं उसीमें हमें सन्देह हो गया है। उसमें सन्देह यह है कि गीत क्या है और नाट्य क्या है?

देवताभिषेकतो यच्च कथितं द्वेषादिमुद्रणम् ।
तत्र संदेहो मे वर्तते किं मुद्रयं कस्य मुद्रणम् ॥ ३ ॥

देवता अभिषेक के द्वारा और द्वेषादि मुद्राओं के द्वारा भी सिद्धि होती ऐसा कहा है वह मुद्रा कैसी है और किसका मुद्रण होना है?

मन्त्रपटले यत् प्रोक्तं नैरात्म्यादेश्च बीजकम् ।
तत्र मे भ्रान्तिः संजाता किं बीजं कस्य बीजकम् ॥ ४ ॥

मन्त्र पटल में आपने कहा नैरात्म्य आदि बीज हैं उससे सिद्धि होती है परन्तु बीज क्या है और किसका बीज?

कुलपटले याः ख्याता नाड्यो द्विषोडशात्मिकाः ।
विशुद्धिं तासां कथयन्तु भगवन्तो भ्रान्तिर्मेऽभूत् ॥ ५ ॥

कुल पटल में जो आपने कहा नाडियाँ १६ हैं और उनके विशुद्धि से सिद्धि होती है वह कौन और विशुद्धि क्या है? हमें भ्रम हो रहा है कृपया आप भ्रान्ति का निराकरण करें।

भगवानाह–
कोल्लइरे ट्ठिअ बोला मुम्मुणिरे कक्कोला ।
घण किविड हो वाज्जइ करुणे किअइ न रोला ॥ ६ ॥
तहि बरु खाज्जइ गाढे मअना पिज्जइ ।
हले कालिञ्जर पणिअइ दुन्दुरु तहि बज्जिअइ ।
चौसम कच्छुरि सिह्ला कप्पुर लाइ अइ ।
माल इन्धन शालिञ्ज तहि भरु खाइअइ ॥ ७ ॥
प्रेङ्खण खेट करन्ते शुद्धाशुद्ध न मुणिअइ ।
निरंसुअ अङ्ग चडाबी तहिं ज सराब पणिअइ ।
मलयजे कुन्दुरु बाटइ डिण्डिम तहिण्ण वज्जिअइ ॥ ८ ॥

'कोल्लइर' – यह पीठ है। इसी प्रकार 'मुम्मुणिर' यह क्षेत्र विशेष है। वे दोनों अति दूर होने पर भी योगिनियों और योगियों के सिद्धि से तत्काल मिलन संभव होता है। किविड यह कृपीट क्षेत्र है। हो – यह सम्बोध 'हे' है। 'करुणे किअइ' करुणा – कृपा करें। किअइ – किया जाता है। रोला – कल कल शब्द को कहते हैं। उपर्युक्त स्थानों में पीठों में, क्षेत्रों में, योगिनियों – डाकिनियों, योगियों और अन्य साधकों को इन्हीं क्षेत्रों में रहकर साधना करने से तत्काल ही सिद्धि प्राप्त होती है। इन स्थानों में रहकर खूब खान, पान, मर्दन, मद्य आदि का प्रचूर मात्रा में पान करें, सुरत में निरन्तर लगे रहें। भिन्न भिन्न सुगन्धित द्रवों का प्रयोग करते हुए, स्रक् – चन्दन – वनिताओं का भी सेवन करें। शान्ति–धान के चावलों से बने पकवानों का भक्षण करते रहें। नृत्य, गीत, वाद्य आदि का आनन्द लेते रहें। अपने अङ्गों में आनन्द के इन श्रोतों का प्रयोग करते हुए मलयज – चन्दन – सुरत – मद्यादि पान – नृत्य – वाद्य आदि के साथ ही सुरत में निरन्तर दत्त चित्त होकर रहें।

नाटयं श्रीहेरुकरूपेण अमुषितस्मृतियोगतः ।
भावना रक्तचित्तेनाविरताभ्यासचेतसा ॥ ९ ॥

नाट्य, भगवान् हेरुक के रूप में ही होता है। अथवा भगवान् हेरुक स्वयं नाट्य करते हैं। उनकी स्मृति कभी भी भ्रंश नहीं होती। और आसक्ति युक्त चित्त से निरन्तर योग का अभ्यास करना ही भावना है।

वज्रधर्मैस्तथा बुद्धैर्योगिनीभिश्च मातृभिः ।
आभ्यां गीतनाट्याभ्यां गीयते नृत्यते परम् ॥१०॥
गणरक्षा त्वनेनैवात्मरक्षा तथैव च ।
अनेनैव वशं लोके मन्त्रजापं त्वनेन तु ॥११॥
सादरं गीयते यत्र सादरं यत्र नृत्यते ।
गणाध्यक्षं पुरस्कृत्यं तत्र घ्राणं तु लक्षयेत् ॥१२॥
लशुनं प्रथमं गन्धं गृध्रगन्धं ततः पुनः ।
कर्पूरं मलयजं तदनु गीताधिष्ठानं लक्षयेत् ॥१३॥

वज्र धर्म, बुद्ध, योगिनियाँ और माताओं के द्वारा इन गीत और नाट्यों से गाया और नाचा जाता है। इन्हीं से ही गणों की रक्षा, इन्हीं से आत्मरक्षा, इन्हीं से वंश रक्षा की जाती है और होती भी है यही मन्त्र जाप भी है। जहाँ आदरपूर्वक इनका जप किया जाता है और आदर से नृत्य किया जाता है साथ ही गणों के अग्रजों को आगे करके यह सब करना चाहिए। इस अवसर पर विशेष पहले लहसून का गन्ध, उसके बाद 'गृध्र' का गन्ध फिर कपूर और चन्दन का सुगन्ध गीत नृत्य के अवसर पर सभी के लिए उपलब्ध होना चाहिए।

रुतं हंसस्य भृङ्गस्य श्रूयते गीतशेषतः ।
गोमायोरपि शब्दं बाह्योद्याने तु लक्षयेत् ॥१४॥
मुद्रणं लिङ्गणाङ्कं च अङ्केन लक्षते कुलम् ।
व्यस्तकुलं भावनायोगान्न सिद्धिर्नापि साधकः ॥१५॥

हंसों का, भ्रमरों का कूजन विशेष रूप से सुनाई देता है। और गोमायुओं का शब्द भी विशेष करके उद्यानों में सुन सकते हैं। वहाँ पर विशेष चिह्न भी दिखाई देते है। जिससे कुलों का संकेत अवश्य होता है। वह व्यस्त कुल भावना योग के माध्यम से परिलक्षित होता है। वहाँ भावना न होने से सिद्धि और साधक दोनों नहीं होते इसीलिए भावना योग अनिवार्य है।

नैरात्म्यां द्वेषमुद्रेण वज्रां च मोहमुद्रया ।
गौरीं पिशुनमुद्रेण वारीं रागेण मुद्रयेत् ॥ १६ ॥

यहाँ क्रमशः द्वेष, मोह, पैशुन्य, राग और ईर्ष्या के अधिष्ठातृ-देवता अक्षोम्य, वैरोचन, रत्न-संभव, अमिताभ और अमोघ सिद्धि हैं। इन सभी को द्वेष-मोह, पिशुन और राग मुद्राओं से चिह्नित करें, मुद्रित करें।

ईर्ष्यामुद्रया डाकिनीञ्च पुक्कसीं द्वेषमुद्रतः ।
शवरीं मोहमुद्रेण चण्डालीं पिशुनमुद्रया ॥ १७ ॥
डोम्बीं रागमुद्रेण पुनर्गौरीं च द्वेषतः ।
चौरीं मोहमुद्रेण वेतालीं पिशुनमुद्रया ॥ १८ ॥

ईर्ष्या मुद्रा से डाकिनी को, द्वेष मुद्रा से पुक्कसी को, मोह मुद्रा से शबरी को और पिशुन मुद्रा से चाण्डाली को मुद्रित करें। राग मुद्रा से डोम्बी को, द्वेष से फिर गौरी को, मोह मुद्रा से चौरी को, पिशुन मुद्रा से वेताली को मुद्रित करें।

घस्मरीं रागमुद्रेण भूचरीं मोहमुद्रतः ।
खेचरीं रागमुद्रेण मुद्रणं जानतेच्छया ॥ १९ ॥

घस्मरी को राग मुद्रा से, भूचरी को मोह मुद्रा से, खेचरी को राग मुद्रा से मुद्रित करें, उन मुद्राओं को जानते हुए या जानने की चाह रखते हुए।

आलेरादि नैरात्म्या वज्रालेर्द्वितीयकम् ।
आलेस्तृतीयकं गौरी चतुर्थं वारियोगिनी ॥ २० ॥
पञ्चमं वज्रडाकी च षष्टमं पुक्कसी मता ।
शवरी सप्तमं चैव चण्डाली अष्टमं स्मृता ॥ २१ ॥
नवमं डोम्बिनी चैव पुनर्गौरी द्विपञ्चकम् ।
चौरी एकादशं ख्यातं वेताली द्वादशं मतम् ॥ २२ ॥
घस्मरी त्रयोदशकं चतुर्दशकं भूचरी ।
पञ्चदशमं खेचरी योगिनीनां स्वबीजकम्॥ २३ ॥

आलि में आदि अकार है। वज्रालि में नैरात्म्या का बीज दूसरा है। आलि का तृतीय गौरी और चतुर्थ वारयोगिनी है। पाँचवीं वज्रडाकी, छठी पुक्कसी, सातवीं शबरी, चण्डाली आठवी है। नवीं डोम्बी है, फिर गौरी दशवीं है, चौरी ग्यारहवीं, वेताली १२वीं है। घस्मरी तेरहवीं, भूचरी चौदहवीं, पन्द्रहवीं खेचरी वे योगिनियों के अपने बीज हैं जो 'अ' से प्रारम्भ होकर 'अः' तक हैं।

कुलपटले या नाड्यः कथिता द्विषोडशात्मिकाः ।
नाडीद्वयद्वयैकैका योगिन्यः क्रमशो मताः ॥ २४ ॥

कुल पटल में जो नाडियाँ कही गई हैं और जिनकी संख्या १६ बतलायी गई हैं वे सब एक एक नाडी योगिनियों के संख्या के आधार पर दो दो हो जाती हैं इसीलिए इनकी संख्या ३२ है।

ललना रसना अवधूती नैरात्म्ययोगिनी मताः ।
सर्वशेषां त्यजेद् यत्नात् षोडशी न कला यतः ॥ २५ ॥

ललना, रसना, अवधूती ये तीन और एक नैरात्म्य योगिनी वे नाडियाँ हैं। इनके अतिरिक्त जो भी हैं उनको छोड़ देवें क्योंकि सब इन्हीं में अन्तर्भूत हो जाती हैं। उनकी आवश्यकता नहीं है।

कस्माद्धेतोः? अर्थक्रियाऽकरणत्वात् ।
बोधिचित्तं भवेच्चन्द्रं पञ्चदशकलात्मकम् ।
आलिरूपं महासौख्यं योगिन्यस्तस्याशंकाः ॥ २६ ॥

क्यों ऐसा कहा गया है – अर्थ क्रिया के कारण ही ऐसा कहा गया है। बोधिचित्त ही चन्द्र है वह १५ कलाओं से युक्त है। वही आलिरूप है। महासौख्य है। सभी योगिनियाँ उसी की अंश हैं।

वज्रगर्भ आह–
कर्पूरं किं न वै त्याज्यं सर्वयोगिनीसंभवम् ।
सहजानन्दस्वभावं चाव्ययं पीवरं खगम् ॥ २७ ॥

वज्रगर्भ ने कहा – क्यों कर्पूर को नहीं त्यागना चाहिए। जो सभी योगिनियाँ जहाँ से उद्भुत हुई हैं वही सहजानन्द स्वभाव युक्त है, अक्षय – कभी नष्ट न होने वाला, व्यापक और एकरसपूर्ण है।

भगवानाह – एवमेतद् यथा वदसि ।
वज्रगर्भ आह – केनोपायेनोत्पादनीयं बोधिचित्तम् ॥ २८ ॥

भगवान् ने कहा – यह ऐसा ही है जैसा तुम कहते हो। वज्रगर्भ ने पूछा – किस उपाय से बोधिचित्त का उत्पादन करना चाहिए ।

भगवानाह-

मण्डलचक्राद्युपायेन स्वाधिष्ठानक्रमेण च ।

बोधिचित्तमुत्पादयेद् वैवृतिसंवृतिरूपकम् ॥ २६ ॥

भगवान् ने कहा - मण्डल-चक्र के माध्यम से और स्वाधिष्ठान क्रम से अर्थात् उत्पन्न क्रम द्वारा बोधिचित्त का उत्पादन करना चाहिए - वह विवृति-संवृति स्वरूपात्मक है ।

संवृतं कुन्दसंकाशं विवृतं सुखरूपिणम् ।

स्त्रीकक्कोलसुखावत्यामेवंकारस्वरूपके ॥ ३० ॥

संवृत पुष्पों के साथ अर्थात् प्रज्ञा का साहचर्य है और विवृत उसी से उत्पन्न सुखात्मक अवस्था है। उसमें एवंकार बीज में समुत्पन्न स्त्री रूप प्रज्ञा के साथ रति से ही वह अवस्था उपलब्ध होती है।

सुखस्य रक्षणादेव सुखावतीति शब्दितम् ।

बुद्धानां बोधिसत्त्वानामाधारं वज्रधारिणाम् ॥ ३१ ॥

सुख रूप रति की संरक्षण से ही सुखावती शब्द प्रयुक्त हुआ है। बुद्ध, बोधिसत्त्व और वज्रधारियों का यही आधार है।

एवमेव तु संसारं निर्वाणमेवमेव तु ।

संसाराद्दृते नान्यन्निर्वाणमिति कथ्यते ॥ ३२ ॥

यही तो निर्वाण का सार और संसार का भी आधार है, वही सुख सुरति है। साथ ही संसार को छोड़कर और कोई निर्वाण पदार्थ नहीं है।

संसारं रूपशब्दाद्याः संसारं वेदनादयः ।

संसारमिन्द्रियाण्येव संसारं द्वेषकादयः ॥ ३३ ॥

रूप, रस आदि ही संसार है। वेदना आदि भी संसार ही है। इन्द्रिय और द्वेष, राग आदि भी संसार ही है।

अमी धर्मास्तु निर्वाणं मोहात् संसाररूपिणः ।

अमूढः संसरन् शुद्ध्या संसारो निर्वृतायते ॥ ३४ ॥

ये सारे धर्म निर्वाण ही है किन्तु मोह के कारण संसार में परिणत हो गए। मूढताविहीन व्यक्ति इन्हीं के शुद्धिकरण के द्वारा संसार से मुक्त हो जाते हैं।

निर्वृतिर्बोधिचित्तं तु विवृतिसंवृतिरूपकम् ।
चारुवक्त्रां विशालाक्षीं रूपयौवनमण्डिताम् ॥ ३५ ॥
श्यामां धीरां कुलीनां तु सिह्लकर्पूरसम्भवाम् ।
स्वाभिषिक्तां तु हेवज्रे सुकेशां साधकप्रियाम् ॥ ३६ ॥
मदनं पाययेत् तस्यां स्वयं चैव पिबेत् ततः ।
पश्चादनुरागयेन् मुद्रां स्वपरार्थप्रसिद्धये ॥ ३७ ॥

निर्वाण ही 'बोधि' चित्त है। विवृति ही संवृति या जगत् है। इसीलिए सुन्दर मुख और विशाल आँखों वाली रूप यौवन आदि से सुसज्जित, धीरा, कुलीना, षोडशवर्षीय, गुग्गल-कर्पूर आदि सुगन्धित द्रव्यों से उत्पन्न, स्वयं अभिषिक्ता, अच्छे केशवाली, साधकों को प्रिय लगने वाली कन्या को हेवज्र साधना में उसे मदनरस - कामरस - शुक्र आदि सुरत पिलाना चाहिए। उसके बाद स्वयं भी पीना चाहिए। उसके बाद मुद्रा के द्वारा उसे मुद्रित करते हुए सुख करना चाहिए इसी से स्वार्थ और परार्थ की सिद्धि होती है।

कक्कोले बोलकं क्षिप्त्वा कुन्दुरुं कुरुते व्रती ।
तस्मिन् योगे समुद्भूतं कर्पूरं न त्यजेद् बुधः॥ ३८ ॥

कक्कोल में बीज का निक्षेपण करने के बाद सुरत में रत होना चाहिए। उससे योग उत्पन्न होने पर कर्पूर का त्याग न करें।

न करेण ततो गृह्येत् शुक्तिकया न शङ्खकैः ।
अमृतं जिह्वया ग्राह्यमेधनाय बलस्य वै ॥ ३९ ॥

उसके बाद उस षोडशी को हाथों से स्पर्श न करें, शक्ति और शंखो से भी उसे स्पर्श न करें। उस अवस्था के अमृत को जिह्वा से ही ग्रहण करे जिससे बल अनन्त गुणा बढ़ जाता है।

कर्पूरमेव नैरात्म्या सुखं नैरात्म्यरूपिण्यम् ।
तस्य सौख्यं महामुद्रा संस्थिता नाभिमण्डले ॥ ४० ॥

कर्पूर ही नैरात्म्यावस्था है। सुख भी नैरात्म्य ही है। उसका सुख रूप महामुद्रा नाभिमण्डल में अवस्थित है।

आदिस्वरस्वभावा सा धीति बुद्धैः प्रकल्पिता ।
सैव भगवती प्रज्ञा उत्पन्नक्रमयोगतः ॥ ४१ ॥

वह आदि स्वर 'अ' स्वभावात्मिका है। वही प्रज्ञा भी है। इसे बुद्धों ने कल्पित किया है। वही भगवती प्रज्ञा है। उत्पन्न क्रम से यह सिद्ध है।

न सा दीर्घा न सा ह्रस्वा न चतुरस्रा न वर्तुला ।
स्वादगन्धरसातीता सहजानन्दकारिणी ॥ ४२ ॥

वह न दीर्घ है, न ह्रस्व है, न चार कानों वाली है, न वर्तुल है, स्वाद-गन्ध-रस आदि से वह दूर है और सहजानन्द कारिणी है।

तस्यामुत्पद्यते योगी तस्याः सौख्यं भुनक्ति च ।
तया सार्धं भवेत् सिद्धिर्महामुद्रा सुखंददा ॥ ४३ ॥

उसी में योगी उत्पन्न होता है और उसी का सुख भोग करता है। उसी के साथ सिद्धि होती है। वही महामुद्रा सुख देती है।

रूपं शब्दस्तथा गन्धो रसः स्पर्शस्तथैव च ।
धर्मधातुस्वभावश्च प्रज्ञयैवोपभुज्यते ॥ ४४ ॥

रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श, धर्म धातु स्वभाव आदि सब प्रज्ञा के द्वारा ही उपभोग किया जाता है।

सैव सहजरूपा तु महासुखा दिव्ययोगिनी ।
सैव मण्डलचक्रं तु पञ्चज्ञानस्वरूपिणी ॥ ४५ ॥

वही सहज स्वरूपिणी है, महासुख रूपिणी, दिव्ययोगिनी है, वही मण्डलचक्र है, पञ्चज्ञान स्वरूपिणी भी वही है।

आदर्शज्ञानरूपा सा समताज्ञानभाविनी ।
सद्भूतप्रत्यवेक्षा च कृत्यानुष्ठान सैव तु ॥ ४६ ॥
सुविशुद्धधर्मधातुः सा सैवाहं मण्डलाधिपः।
सैव नैरात्म्ययोगिनी स्वरूपं धर्मधातुकम् ॥ ४७ ॥

आदर्श ज्ञानरूपा वही है। समता ज्ञान रूपिणी, प्रत्यवेक्षणाज्ञानरूपिणी, कृत्यानुष्ठानरूपिणी भी वही है। सुविशुद्ध धर्मधातु, मण्डलाधिप वही है और उसके साथ मैं भी हूँ। वही नैरात्म्य योगिनी है जो धर्मधातु का भी स्वरूप है।

वज्रगर्भ आह-

चक्रभावनामार्गेण देवतानां यथोदयम् ।
भगवता कथितं पूर्वं संवरं कथयस्व मे ॥ ४८ ॥

वज्रगर्भ ने कहा - चक्रों की भावना मार्ग के माध्यम से जैसे देवताओं का उदय होता है वह आपने कहा हे भगवन् अब मुझे संवर - सुख के विषय में कृपया बतावें ।

भगवानाह-

योगिन्या देहमध्यस्थं अ-कार संवरस्थितम् ।
यथा बाह्यं तथाध्यात्मं संवरं तत् प्रकाशितम् ॥ ४६ ॥

भगवान् ने कहा - योगिनी के देह के बीच में 'अ' कार मन्त्र अवस्थित है। जैसे बाहर वैसा ही अन्दर भी है वहीं पर संवर प्रकाशित होता है।

बोलसौख्यं महामुद्रा वज्रायतनमुपायकम् ।
अनया गुह्यसमापत्त्या बाह्यद्वन्द्वं निदर्शितम् ॥ ५० ॥

'हूँ' कार मन्त्र ही सौख्य है, वही महामुद्रा भी है। वही वज्रगर्भ का आधार है - उपाय है। इसी गुह्य सम्पत्ति द्वारा बाह्य नैरात्म्य हेरुक सुरत की उत्पत्ति या निदर्शन होता है।

त्रिकायं देहमध्ये तु चक्ररूपेण कथ्यते ।
त्रिकायस्य पञ्चज्ञानं चक्रमहासुखं मतम् ॥ ५१ ॥
धर्मसंभोगनिर्माणं महासुखं तथैव च ।
योनिहृत्कण्ठमस्तेषु त्रयः काया व्यवस्थिताः ॥ ५२ ॥
अशेषाणां तु सत्त्वानां यत्रोत्पत्तिः प्रगीयते ।
तत्र निर्माणकायः स्यान्निर्माणं स्थावरं मतम् ॥ ५३ ॥
उत्पद्यते निर्मीयते अनेन निर्माणिकं मतम् ।
धर्मश्चित्तस्वरूपं तु धर्मकायो हृदि भवेत् ॥ ५४ ॥
संभोगं भुञ्जनं प्रोक्तं षण्णां वै रसरूपिणम् ।
कण्ठे संभोगचक्रं च महासुखं शिरसि स्थितम् ॥ ५५ ॥
एवंकारे च निष्यन्दं विपाकं धर्मचक्रतः ।
पुरुषकारं संभोगे वैमल्यं सुखचक्रके ॥ ५६ ॥

फलं चतुर्विधं प्रोक्तं निष्यन्दाद्यैर्विभेदितम् ।
कर्मभुग् भगवती प्रज्ञा कर्ममारुतचोदिता ॥ ५७ ॥
यथाकृतं तथा भुक्तं निष्यन्द इति शब्दितम् ।
विपाकं तद्विपर्यासं कर्मण्यल्पे महत् फलम् ।
पुरुषकारमुपार्जनं वैमल्यं योगशुद्धितः ॥ ५८ ॥

त्रिकाय अर्थात् बुद्ध के निर्माण, धर्म एवं संभोग काय हैं उन्हीं में यह चक्र कहा जाता है। त्रिकायों का जो पञ्च ज्ञान है वही चक्र महासुख कहा गया है। धर्म-सम्भोग-निर्माण ही महासुख है। योनि, हृदय, कण्ठ और मस्तकों में तीन काय व्यवस्थित हैं। समग्र प्राणियों की उत्पत्ति जहाँ होती है वह निर्माण काय है। जहाँ समग्र स्थावरों का निर्माण होता है। उत्पन्न होते हैं, निर्मित होते हैं इसी से निर्माण कहा गया है। धर्म ही चित्त स्वरूप है इसीलिए धर्मकाय हृदय में होता है। संभोग ही भुञ्जन-भोजन करना कहा गया है षड्रसों का, कण्ठ में ही संभोगचक्र अवस्थित है और महासुखचक्र शिर में अवस्थित है। एवं कार में रस है। पाक धर्मचक्र से है, संभोग में पुरुषाकार है सुखचक्र में विमलता आनन्द है। उसमें चार प्रकार के फल भी हैं, जो निष्यन्द आदि भेद के कारण होते हैं। कर्मभोक्त्री भगवती प्रज्ञा है। कर्मफलों से प्रेरित होकर ही वह भोग करती है।

जैसा किया है वैसा ही फल भोग होगा यह निष्यन्द शब्द से कहा गया है। उसका उल्टा विपाक कहलाता है। कर्म थोड़ा भी हो फल बहुत ज्यादा होता है। कुशल फलों एवं कर्मों का उत्पादन पुरुष के विमल एवं योग शुद्ध कर्मों से ही संभव होता है।

रस्तुण्डमुण्डितः ॥ ६३ ॥
आभिः सामग्रीभिः सत्त्वा बुद्ध एव न संशयः ।
भूमयो दशमासाश्च सत्त्वा दशभूमीश्वराः ॥ ६४ ॥

'अ' कार ही योनिचक्र है 'ह' कार महासुख का प्रतीक है। जन्म लेने वाला मन्त्र का जाप करते हुए, नग्न ही, खाली शिर के साथ (मुण्डित हुए ही) इन्हीं उपर्युक्त सामग्रियों के साथ जो भी सत्त्व हैं वे सब के सब बुद्ध ही हैं, इसमें सन्देह नहीं है। उनकी भूमियाँ दश महीने हैं जो माँ के गर्भ में रहते हैं इसीलिए वे सब दशभूमीश्वर हैं या बुद्ध ही दशभूमि के ईश्वर कहलाते हैं

अथ सर्वा देव्यो नैरात्म्ययोगिनीप्रमुखाः। तद्यथा लोचना मामकी च पाण्डुरा च तारा च भृकुटी च चुन्दा च पर्णशवरी च अहोमुखा च। एवं प्रमुखाः सुमेरुपरमाणुरजः समा योगिन्यः परमविस्मयमापन्नाः ॥ ६५ ॥

अब सभी नैरात्म्य प्रमुख देवियाँ जैसे कि - लोचना, मामकी, पाण्डुरा, तारा, भृकुटी, चुन्दा, पर्णशबरी और अहोमुखा (वहाँ पर अवस्थित हैं)। इस प्रकार सभी प्रमुख सुमेरु परमाणु रजों के समान योगिनियाँ अत्यन्त विस्मित - आश्चर्ययुक्त हो गई।

एतां भारतीं श्रुत्वा मूर्च्छिताः संत्रस्ता अवनौ पतिताः।
धूनप्राप्ताः ताः सर्वदेवीर्दृष्ट्वा संस्तौति वज्री पुनरुत्थापनाय च ॥ ६६ ॥
खिति जल पवण हूतासानह तुम्हे भाईणि देवी।
सुनह पवञ्चमि ततुमहु जो ण जानई को वि ॥ ६७ ॥
स्वप्नवद्भगवतो वचनं श्रुत्वा सर्वास्ता जीवप्राप्ता अभूवन् ॥ ६८॥
भगवानाह-
सत्त्वा बुद्धा एव किं तु आगन्तुकमलावृताः।
तस्यापकर्षणात् सत्त्वा बुद्धा एव न संशयः ॥ ६९ ॥
देव्य आहुः - एवमेतद् भगवन्, सत्यं न मृषा ॥ ७० ॥

इस प्रकार के बुद्ध के वचनों को सुनकर वे सब योगिनियाँ मूर्च्छित, संत्रस्त और भूमि पर गिर गयीं। पृथ्वी पर गिरे हुए निःसंज्ञ उन देवियों को देखकर उनको फिर से उठाने के लिए उनकी स्तुतिपूर्वक वज्रधारी भगवान् यह वाणी बोलते हैं - पृथ्वी, जल, पवन, अग्नि आदि की तुम सब वहन हो। मैं आकाश को ही प्रपञ्च के रूप में फैलाता हूँ। परन्तु उस मेय-तत्त्व को कोई भी नहीं जानता है। स्वप्न के तरह भगवान् के इस वचन को सुनकर वे सभी जीवन को प्राप्त हो गये यानि वे फिर उठ खड़ी हो गयीं। भगवान् ने कहा - सभी सत्त्व बुद्ध ही हैं। किन्तु आगन्तुक मलों से आवृत होने से वे नहीं जानते। उस मल के हटते ही वे सब बुद्ध ही हो जाते हैं इसमें सन्देह नही है। देवियों ने कहा - ऐसा ही है भगवन्। यही सत्य है, झूठ नहीं है।

भगवानाह-

घस्मइ गरलह भक्खाणहि जो निच्चेडच्च ण लोअ ।
मोहवैवर्जिता ततुमण तत्त्व पर तुटुअ सो अ ॥ ७१ ॥

सब ओर विष से ही लोक घिरा रहता है। कैसे इनका निर्विषीकरण हो सकता है। उसके लिए मोहरहित विषय तत्त्व ज्ञान आवश्यक होता है। विष समाप्त हो जाने पर मन तत्त्वमय हो जाता है। उसके बाद शोक समाप्त हो जाता है ।

तथा निर्वृत्युपायज्ञा हेवज्रेषु कृतश्रमाः ।
अविद्याद्यैर्न गृह्यन्ते न च मोहादिबन्धनैः ॥ ७२ ॥
अबुद्धो नास्ति सत्त्वैकः संबोधात् स्वस्य स्वस्य च ।
नरकप्रेततिर्यञ्च देवासुरमनुष्यकाः ॥ ७३ ॥

वैसे ही निर्वृति-निर्वाण वे उपाय के ज्ञाता और हेवज्र में जिन्होंने श्रम किया है वे अविद्या आदि के वश में नहीं आ सकते। और न ही मोहादि बन्धन होते हैं। कोई एक भी प्राणी अबुद्ध नहीं है। संबोधि से अपने चित्त का और अन्य सभी के चित्तों के साथ ही नरक आदि लोक में रहने वाले तथा देव, असुर, मनुष्य, प्रेत-तिर्यक् सभी के चित्त बोधि से युक्त हो जाते हैं।

अमेध्यकीटकाद्यास्तु नित्यं सुखिनः स्वभावतः ।
न जानन्ति यतः सौख्यं देवस्याप्यसुरस्य च ॥ ७४ ॥
न बुद्धो लभतेऽन्यत्र लोकधातुषु कुत्रचित् ।
चित्तमेव हि सुबुद्धो न बुद्धोऽन्यत्र दर्शितः ॥ ७५ ॥
चण्डालचेण्डकाराद्या मारणार्थार्थ-चित्तकाः ।
तेऽपि हेवज्रमागम्य सिध्यन्ते नात्र संशयः ॥ ७६ ॥
अज्ञानेनावृता बाला इमां गतिमजानकाः ।
संसरन्ति च ते मूढाः षड्गतौ भवचारके ॥ ७७ ॥
उपायं प्राप्य हेवज्रं वज्रगर्भ महाकृप ।
विशोधयन्ति विषयान् लप्स्यन्ते ते ह्यनुत्तरम् ॥ ७८ ॥

अपवित्र स्थानों में रहने वाले कीड़े आदि नित्य सुख स्वभाव में ही हैं किन्तु वे जानते नहीं है। यहाँ तक कि देवता असुर आदि भी सुख स्वभाव को नहीं जानते। बुद्ध किसी दूसरे लोक धातु या अन्य स्थान में प्राप्त नहीं होते।

क्योंकि चित्त ही स्वयं बुद्ध है। बुद्ध दूसरे स्थान में उपलब्ध नहीं हैं। चाण्डाल, वेणुकार आदि नीच लोग भी जो केवल मरण-धर्म में संलग्न रहते हैं वे भी हेवज्र मार्ग द्वारा सिद्ध होते हैं। इसमें सन्देह नहीं है। अज्ञान द्वारा ये सभी मूर्खलोग आवृत हैं इसीलिए इस गति को नहीं जान सकते। वे निरन्तर संसार चक्र में घूमते ही रहत हैं। षड्गति अर्थात् संसार रूपी कारागार में रहते हैं। हेवज्र रूप उपाय को प्राप्त कर हेवज्रगर्भ, हे महाकृपालु! वे सब विषयों का शोधन करते हैं और अनुत्तर गति को प्राप्त करते हैं।

वज्रगर्भ आह -

पृथिवी पुक्कसी ख्याता कथमक्षोभ्यमुद्रणम् ।
मोहं यस्मात् कक्खाटत्वं कायो वैरोचनो मतः ।
पुक्कसी मोहमुद्रणं मुद्रणं युज्यते प्रभो ॥ ७६ ॥

वज्रगर्भ ने कहा - पृथिवी 'पुक्कसी' के नाम से विख्यात है। और अक्षोभ्य मुद्रा कैसे होगी। जिससे मुद्रा होती हे वह पृथिवी ही है। काय-शरीर वैरोचन ही हैं। पुक्कसी मोहमुद्रा है। जिससे मोहमुद्रण के लिए युक्त किया जाता है।

भगवानाह -

कायं विहाय चित्तस्य नान्यत्र ललितं भवेत् ।
तस्माद् वैरोचनश्चित्तं कायं चित्तेन मुद्रयेत् ॥ ८० ॥

भगवान् ने कहा - शरीर को छोड़कर चित्त को कहीं भी 'विलास'= विश्राम नहीं मिल सकता है। इसीलिए चित्त वैरोचन ही है जिसे चित्त के द्वारा काय को मुद्रित किया जाता है।

वज्रगर्भ आह -

अब्धातुः शवरी ख्याता अक्षोभ्यो द्रवरूपकः ।
शवरी अक्षोभ्यमुद्रेण मुद्रणं युज्यते प्रभो ॥ ८१ ॥

वज्रगर्भ ने कहा - जलधातु ही शबरी कहलाती है। अक्षोभ्य ही रुद्र देवता है। शबरी अक्षोभ्य मुद्रा से युक्त हैं। इसी से उनका मुद्रण संभव होता है हे प्रभो!

भगवानाह –

चित्तं विहाय कायस्य स्थितिरन्या न दृश्यते ।

तस्माच्चित्तं भवेत् मोहं चित्तं मोहेन मुद्रयेत् ॥ ८२ ॥

भगवान् ने कहा – चित्त को छोड़कर शरीर की कोई दूसरी स्थिति नहीं हो सकता है। इसीलिए चित्त ही मोह है। इसीलिए चित्त को मोह से मुद्रित करना चाहिए ।

वज्रगर्भ आह –

तेजश्चण्डालिनी ख्याता कथं रत्नेन मुद्रणम् ।

युज्यते रागमुद्रेण चण्डाल्या नान्यमुद्रणम् ॥ ८३ ॥

वज्रगर्भ ने कहा – तेजः ही चण्डाली कहलाती है। कैसे रत्न से उसे मुद्रित किया जा सकता है। रोग मुद्रा से ही उसे मुद्रित किया जा सकता है अन्य कोई मुद्रण नहीं है।

भगवानाह –

रागो रक्तं यतः ख्यातं रक्तं च रत्नसंभवः ।

तेजो रक्तस्वभावत्वाद् रागं पिशुनेन मुद्रयेत् ॥ ८४ ॥

भगवान् ने कहा – 'राग' ही आसक्ति है। जिस कारण राग कहा जाता है इसीलिए उसके रत्न संभव हुए। तेज रक्त स्वभाव युक्त होने से 'राग' को रत्न संभव के द्वारा मुद्रित किया जाता है।

वज्रगर्भ आह –

यस्माद् डोम्बिनी वायुरमोघो वायुरूपकः ।

डोम्बिन्यमोघमुद्रेण मुद्रणं युज्यते प्रभो ॥ ८५ ॥

वज्रगर्भ ने कहा – जिस कारण से डोम्बिनी कहलाती है वह वायु है। इसीसे अमोघसिद्धि वायुरूप हैं। अतएव अमोघ मुद्रा से ही डोम्बिनी मुद्रित होती है क्या यही आप बता रहे हैं?

भगवानाह –

रागं हित्वा ईर्ष्याया न स्यादन्यत्र संभवः ।
तस्माद् रागस्य मुद्रेण डोम्बिनीं मुद्रयेद् बुधः ॥ ८६ ॥
रूपं यस्मात् कक्खाटत्वं गौर्या वैरोचनो मतः ।
पूर्वोक्तेनैव न्यायेन चित्तेशेनैव मुद्रयेत् ॥ ८७ ॥
चौरीं तेनैव न्यायेन वेतालीञ्च तथैव च ।
घस्मरीं च तथा युक्त्या मुद्रणमविपरीततः ॥ ८८ ॥
समापत्तौ स्थिते देवे हेवज्रे वज्रधारिणि ।
तत्र पृच्छति नैरात्म्या सत्त्वार्थाय महाबलिम् ॥ ८९ ॥

भगवान् ने कहा – ईर्ष्यारूप राग को छोड़कर दूसरे जगह यह संभव नहीं है। इसीलिए राग के मुद्रण द्वारा डोम्बिनी को मुद्रित करें। जिससे रूप दिखता है वह गौरी के कारण है, और वह वैरोचन हैं। पूर्वोक्त न्याय से ही चित्त के द्वारा उनका नियमन करें। चौरी, वेताली और घस्मरी को भी उसी प्रकार युक्ति से नियमन करना चाहिए। समापत्ति के अवसर पर वज्रधारी हेवज्र उसमें अवस्थित होते है, उसी अवसर पर सभी प्राणियों के कल्याणार्थ प्रश्न करते हैं – बलि कैसे देना है?

एवंकारे समासीनो वज्रसत्त्वो दिशेद् बलिम् ।
सत्त्वानां प्राणरक्षाय विघ्नाद् विनायकादपि ॥ ९० ॥

एवं कार के साथ एकाकार होकर वज्रसत्त्व बलि करें। जिससे प्राणियों की प्राणरक्षा होती है विघ्नों और विनायकों से भी रक्षा होती है।

इन्द जम जल जक्ख भुत वह्नि वायु रक्ख ।
चन्द सुज्ज माद बप्प तलपाताले अट्ठसप्प स्वाहा ॥ ९१ ॥
इदं बलिं भुञ्ज जिघ्र फुल्ल-धूप-मांस-विङ्घ ।
अम्भ कज्ज सव्व साध खन्ति कुणि फेड गाद ॥ ९२ ॥
ओं अकारो मुखं सर्वधर्माणामाद्यनुत्पन्नत्वात् ।
ओं आः हूँ फट् स्वाहा ॥ ९३ ॥

इन्द्र, यम, जल हमारी रक्षा करें। भूत, अग्नि, वायु भी रक्षा करें। चन्द्र, सूर्य, माता अथवा पृथिवी, पिता अथवा ब्रह्मा और नीचे पाताल में आठ सर्प

भी रक्षा करें स्वाहा । आप यह बलि ग्रहण करें। खायें, सूँघे, पुष्प ग्रहण करें, धूप और मांस भी भक्षण करें। और अपने आप को बढायें तृप्त करें। हमारे सभी काम पूरा करायें। हमारे शरीर में जो भी घाव वगैरह हैं उन्हें भी समाप्त करें। ऊँ कार सभी धर्मों का मुख है क्यों यह सभी धर्मों का उत्पत्ति स्थान है। ऊँ आ: हूँ फट् स्वाहा।

अनेन बलिना यदि सर्वभूतान् पूजां प्रकुर्वन्ति शुभाय योगिनः।
भवेत्तदा तेषु सुखमनाविलं देवाश्च तुष्यन्ति जगत्सुभूतयः ॥ ९४ ॥

इस बलि द्वारा यदि योगी लोग सभी भूतों की पूजा करते हैं तो शुभ के लिए होता है। इससे, सुख शान्ति होगी, इससे देवता भी सुखी होते हैं जगत् के कल्याण के लिए भी होता है।

वश्याभिचार रिपुसैन्यनाशनमुच्चाटनमारणा कर्षणं च शान्ति सुखं पौष्टिकं भवेच्च दद्यात् बलिं यदीह भूतगणाय शाश्वतः ॥ ९५ ॥

वश्य कर्म, अभिचार कर्म, शत्रु के सेना को नाश - उच्चाटन मारण आकर्षण आदि भी इससे होता है और शान्ति सुख, पुष्टि भी होते हैं। अतएव भूतों को हमेशा बलि देना ही चाहिए ।

वज्रगर्भ आह -

खेचरी केन मुद्रेण भूचरी कस्य मुद्रतः ।
कर्त्तव्यं मुद्रणं कथं प्राग् न ज्ञातं मया प्रभो ॥ ९६ ॥

वज्रगर्भ ने कहा - हे प्रभो मैंने यह नहीं जाना कि खेचरी और भूचरी किन मुद्राओं से वश में होती हैं कृपया उनकी मुद्रण का प्रकार बतायें मैंने पहले नहीं जाना है।

त्रिगुह्यं चक्रमध्ये तु कायवाक्चित्तभेदतः ।
अधोर्ध्वमध्यमं स्थानं चक्रमध्ये व्यवस्थितम् ॥ ९७ ॥
भूचरी कायमुद्री स्यादधोमुखी कायवज्रिणी ।
खेचरी रागमुद्री च ऊर्ध्वमुखी वाग्वज्रिणी ॥ ९८ ॥
चित्तवज्री च नैरात्म्या चित्तं नैरात्म्यरूपकम् ।
चित्तं मध्यमकं स्थानं नैरात्म्या तेन मध्यजा ॥ ९९ ॥
कुलानि षड्विधान्याहुर्विस्तरेण प्रकाशयेत् ।

त्रिविधं पञ्चविधं चैव कथ्यते श्रृणु योगिनी ॥ १०० ॥

भगवान् ने कहा – चक्रों में त्रिगुह्य हैं – काय, वाक् और चित्त के भेद से। अधः, ऊर्ध्व और मध्यम उनके स्थान चक्रों में व्यवस्थित हैं।

भूचरी काय मुद्रा से सम्बन्धित है। वह अधोमुखी है और कायवज्रिणी भी है। खेचरी राग मुद्रा युक्त है, ऊर्ध्व मुख वाली तथा वाग्वज्रिणी है। चित्तवज्री नैरात्म्या है चित्त में ही नैरात्म्य रूप से रहती है। चित्त ही मध्यम स्थान है। इसी से नैरात्म्या मध्यम से उत्पन्न हुई कहा जाता है। कुछ ६ प्रकार के हैं। विस्तारपूर्वक इसे प्रकाशित करेंगे। कहीं तीन प्रकार, कहीं पाँच प्रकार है ऐसा कहा जाता है इसे योगिनी श्रवण करें ।

अक्षोभ्य-वैरोचन-रत्नसंभव-अमितप्रभ-अमोघसिद्धि-वज्रसत्त्वाः। द्वेष-मोह-पिशुन-राग-ईर्ष्या-सौख्यम्। शुद्ध्यानयानुक्रमतो हि भाव्याः॥१०१॥

अक्षोभ्य, वैरोचन, रत्नसंभव, अमितप्रभ, अमोघसिद्धि ये वज्र सत्त्व है। द्वेष, मोह, पिशुन, राग, ईर्ष्या और सुख ये सभी शुद्धि पूर्वक इसी क्रम से सेवनीय हैं।

विहाय वज्रसत्त्वाख्यं पश्चात् पञ्चविधं कुलम् ।
तदनु याति त्रैविध्यं मोहरागद्वेषकैः ॥ १०२ ॥
कुलमेकं तु चित्तेशमक्षोभ्यद्वेषरूपिणम् ।
द्वेषवज्र प्रभावोऽयं कुलं षट् पञ्चकं मतम् ॥ १०३ ॥

वज्र सत्त्व नाम के देवता को छोड़कर पाँच प्रकार का कुल है। बाद में वह भी तीन प्रकार का हो जाता है – मोह-राग-द्वेष नामक शक्तियों के कारण। कुल एक ही वह भी चित्तेश, अक्षोभ्य और द्वेष रूप के कारण। उसी द्वेष वज्र के कारण ही कुल पाँच और छह प्रकार का हो जाता है ।

द्वितीयकल्पराज में चतुर्थ पटल पूर्ण हुआ।

हेवज्राभ्युदयः पञ्चमः पटलः

अथ वज्री महाराजा हेवज्रः सर्वदः प्रभुः ।
सर्वाकारस्वभावात्मा मण्डलं संप्रकाशयेत् ॥ १ ॥
सुखावत्यां समासीनः सर्वाकारस्वरूपतः ।
चित्तवज्रस्य बीजेन निष्पन्नो मण्डलेश्वरः ॥ २ ॥
षोडशभुजमष्टास्यं चतुश्चरणं भयानकम् ।
कपालमालिनं वीरं नैरात्म्याश्लिष्ट-कन्धरम् ।
पञ्चमुद्राधरं देवं नैरात्म्या पृच्छति स्वयम् ॥ ३ ॥

अब, इसके बाद महाराजा, हेवज्र, सब कुछ देने वाले, प्रभु सर्वाकार स्वभाव होने से मण्डल का प्रकाशन करते हैं। सुखवती भूमि में अवस्थित होकर, सर्वाकार होकर, चित्तवज्र के बीज से मण्डलेश्वर होकर उदित हुए हैं। १६ हाथ हैं। आठ मुख हैं। चार पैर हैं। स्वरूप भयानक है। नरकपालों की माला धारण किए हुए हैं। वीर हैं। नैरात्म्य - शवों को अपने स्कन्धों में धारण किए हुए हैं। पाँच मुद्रा धारण किए हैं। ऐसे देव को स्वयं भगवती नैरात्म्या पूछ रही है।

अस्मच्चक्रं त्वया कथितं पञ्चदशपरिवारितम् ।
त्वदीयं मण्डलं कीदृक् प्राग् न ज्ञातं मया प्रभो ॥ ४ ॥

हमारा चक्र आपने बताया है। वह १५ तत्त्वों से युक्त है। किन्तु आप का मण्डल कैसा है। मैंने पहले से नहीं जाना है।

चुम्बयित्वा तु नैरात्म्यां क्षिप्त्वा वज्रं कपालके ।
मर्दयित्वा स्तनौ देवो मण्डलं संप्रकाशयेत् ॥ ५ ॥

नैरात्म्या देवी - स्त्री का चुम्बन करके वज्र को कपाल में फेंककर दोनों स्तनों का मर्दन करके भगवान् हेवज्र मण्डल का प्रकाशन करें।

चक्रं पूर्वं यथा कथितं हारार्धहारशोभितम् ।

चतुष्कोणं चतुर्द्वारं वज्रसूत्रैरलंकृतम् ॥ ६ ॥
तत्र मध्येऽहं विद्यते त्वया सार्धं वरानने ।
महारागानुरागेन सहजानन्दस्वरूपतः ॥ ७ ॥

पहले आपने जो चक्र का स्वरूप बताया है उसमें आधे हारों से सुशोभित है, चतुष्कोण, चार द्वार और वज्रसूत्र से अलंकृत कहा है। उसके बीच में मैं रहता हूँ तुम्हारे साथ हे वरानने! महानुराग से सहजानन्द रूप से आप्लावित होकर।

अष्टास्यं चतुश्चरणं भुजषोडशभूषितम् ।
चतुर्मारसमाक्रान्तं भयस्यापि भयानकम् ॥ ८ ॥
मुण्डमालाकृतहारं सूर्यस्थं ताण्डवान्वितम् ।
विश्ववज्रधरं मूर्ध्नि कृष्णवर्णभयानकम् ॥ ९ ॥
हूंकारं स्फारयेन्मुखाद् भस्मोद्धूलित-विग्रहम् ।
रतिद्वन्द्वसमापन्नं नैरात्म्या सह संयुतम् ॥ १० ॥
निस्तरङ्गसुखावासं निस्तरङ्गस्वरूपिणम् ।
मूलमुखं महाकृष्णं दक्षिणं कुन्दसन्निभम् ॥ ११ ॥
वामं रक्तं महाभीमं मूर्धास्यं विकरालिनम् ।
चतुर्विंशतिनेत्राद्यं शेषास्या भृङ्गसन्निभाः ॥ १२ ॥
त्वया मया पुरे रम्ये क्रीडता रतिनिर्भरैः ।
निःसृता इन्द्रदिग् गौरी पूर्वद्वारे सुसंस्थिता ॥ १३ ॥

आठ मुख, चार चरण, १६ भुजायें, चार मारों को अतिक्रमण करते हुए भय का भी भय मैं हूँ। मुण्डों के मालाधृत, सूर्य में स्थित होकर ताण्डव नृत्य करते हुए, शिर में विश्व वज्र धारण किए हुए, भयानक कृष्णवर्ण युक्त होकर मुख से हूँकार का उच्चारण करते हुए शरीर में भस्म पूर्ण रूप से लगाकर रति – स्त्रीसमागमरूप द्वन्द्व में नैरात्म्या योगिनी स्त्री के साथ होकर, समग्र तरङ्गरहित सुखावास करके, तरङ्गरहित स्वरूप में मुख की मूल अवस्था अति कृष्ण बनाकर दक्षिण सुरत से युक्त होकर वाम, रक्त महाभीम, शिर और मुख विकराल वाला होकर, २४ नेत्रों से देखते हुए अन्य मुख भृङ्ग के तरह बनाकर तुम और हम (मैं) रमणीय नगर में रति में निमग्न होकर क्रीडा कर रहे थे

उसी से पूर्व दिशा में गौरी आविर्भूत हुई और वह पूर्वद्वार में रहती है।

मन्थमन्थानयोगेन चौरिका निःसृता पुनः ।
निःसृत्य दक्षिणे द्वारे चौरी सा द्वारपालिका ॥ १४ ॥

उसी मैथुन क्रीडा के दौरान ही दूसरी शक्ति 'चौरिका' उत्पन्न हुई, वह फिर दक्षिणद्वार में द्वारपाल होकर रहने लगी है।

बोलकक्कोलयोगेन वेताली निःसृता पुनः ।
निःसृत्य पश्चिमे द्वारे निषण्णा मारभञ्जनी ॥ १५ ॥

बोल और कल्लोल के योग से फिर वेताली उत्पन्न हुई। निकलकर पश्चिम द्वार में अवस्थित है जो काम-मार को भञ्जन करते हुए रहती है।

महाद्वन्द्वसमापत्तौ निःसृता घस्मरी पुनः ।
निःसृत्य उत्तरे द्वारे निषण्णा घोररूपिणी ॥ १६ ॥
द्वयोर्घर्षणसंयोगान्निःसृता पुक्कसी पुनः ।
निःसृत्यैशानकोणे च निषण्णा रौद्ररूपिणी ॥ १७ ॥
पुनर्मन्थानयोगेन शवरी पावककोणके ।
चण्डाली रक्षसाशायां डोम्बी मारुतकोणके ॥ १८ ॥

महाद्वन्द - मैथुन के समापत्ति पूर्णता पर घस्मरी उत्पन्न हुई। वह निकलकर उत्तर द्वार पर स्थित हुई और भयङ्कर रूप धारण कर रहती है। हम दोनों के सुरत से फिर पुक्कसी पैदा हुई, उत्पन्न होकर ईशान कोण में रुद्ररूप में रहने लगी। फिर हमारे मैथुन योग द्वारा शबरी पैदा हुई और आग्नेय कोण में स्थित हो गई। चाण्डाली भी उसी प्रकार पैदा हुई और नैऋत्य कोण में रहने लगी, इसी प्रकार वायव्य कोण में रहती है डोम्बी जो हमारे सुरत से उत्पन्न हुई थी।

ततो वज्री महारागाद् द्रुतभूतं सविद्यया ।
चोदयन्ति ततो देव्यो नानागीतोपहारतः ॥ १९ ॥
उट्ठ भराडो करुणमण्ड पुक्कसी महुं परिताहिं ।
महासुअ जोए काम महुं छड्डुहिं सुण्णसमाहि ॥ २० ॥
तोह्या विहुण्णे मरमि हहुं उट्ठेहिं तुहुं हेवज्ज ।
छड्डुहि सुन्नसभावडा शवरिअ सिह्याउ कज्ज ॥ २१ ॥

इसके बाद वज्र सत्त्व महाराग रूपज्ञान के द्वारा - सहज ज्ञान द्वारा, अपने

ही ध्यान से ज्ञान द्रव रूप में परिणत हो गए, नाना गीत आदि उपहार द्वारा देवियों ने अर्थात् पुक्कसी - शवरी चण्डाली डोम्बी आदि ने उनकी प्रार्थना की और उन्हें यों कहा - सर्वप्रथम पुक्कसी ने कहा हे भट्टारक! करुणामूर्ति! मुझ पुक्कसी की रक्षा कीजिए। मुझे महासुख में रमण करायें। वह मोक्षरूप महासुख का अनुभव करायें। अपने शून्य समाधि से उठिए। आप हेवज्र मूर्ति हैं जो द्रवित हुए है। आप मुझे रमण करायें। इसके बाद शबरी ने कहा - आपके विरह में मैं मर रही हूँ। हे हेवज्र आप उठें। शून्य स्वभाव को त्याग दें। इस (मैं) शबरी का कार्य सिद्ध करें ।

लोअ निमन्तिअ सुरअपहु सुण्णे अच्छसि कीस ।
हौं चण्डालि विण्णनमि तइ विण्ण डहमि न दीस ॥ २२ ॥
इन्दी आली उट्ठ तुहुं हौं जानामि त्तुह चित्तः ।
अम्भे डोम्बी छेअमण्ड मा कर करुणविच्छित्तः ॥ २३ ॥

अब चाण्डाली निवेदन कर रही है हे सुरत प्रभो! शून्य में विलीन होकर रहते हो। मैं चाण्डाली यह तुम्हें निवेदन कर रही हूँ। तुम्हारे बिना सारी दिशायें अन्धकारमय हो गयी हैं। अब डोम्बी निवेदन करती है - हे इन्द्रजालिक हेवज्र, आप उठो। यह इन्द्रजाल सब तुम्हारा ही तो है। मैं भी तुम्हारे इस धूर्त चित्त को जानती ही हूँ। यह मैं छेकाकुल की नागरिक हूँ। तुम जान लो। मुझे तुम करुणारहित होकर निरस्त मत करो। मुझे देखो। मुझे आनन्दित करो ।

हस्त्यश्वखरगावुष्ट्रमनुजसरभौतुकस्तथा ।
दक्षिणाष्टकपालेषु क्रमैर्ज्ञेया द्विपादयः ॥ २४ ॥
पृथिवी वरुण वायुश्च तेजश्चन्द्रार्क एव च ।
अन्तको धनदश्चैव वामकाष्टकपालके ॥ २५ ॥
श्रृङ्गारवीरबीभत्सरौद्र-हास्य-भयानकैः
करुणाद्भुतशान्तैश्च रवनाट्यरसैर्युतम् ॥ २६ ॥
अं हूं भ्यां च महावज्री उत्थितो द्रवमूर्तितः ।
चरणान् स्फारयन् भूमौ तर्जयञ्च सुरासुरान् ॥ २७ ॥

हाथी, घोड़ा, गधा, गाय, ऊँट, मनुष्य, सरम, आदि दक्षिण-अष्ट कापालों में क्रमशः रहते हैं यह जान लेना चाहिए। पृथिवी, वरुण, वायु, तेज, चन्द्र,

सूर्य, यम, कुबेर वाम-अष्ट कपाल में रहते हैं। श्रृंगार-वीर-बीभत्स-रौद्र-हास्य-भयानक-करुणा अद्धुत और शान्त ये सब रस हेवज्र के शब्द में रहते हैं नाटचरस से युक्त होकर। इसके बाद हेवज्र 'अं' 'हूँ' इन बीजों का उच्चारण करते हुए अपने द्रव-शून्य स्वरूप को छोड़कर अपने पैरों को भूमि में पटकते हुए सुर असुर सभी को डराते हुए उठ गये।

गं चं वं घं पं शं लं डं बीजैस्तु सृजेदासाम् ।
अधिपतिरतिबीजाभ्यां हूं-अं-भ्यां ज्वालाकरालनीलाभ्याम् ॥ २८ ॥

गं, चं, वं, घं, पं, शं, लं, डं बीजों के द्वारा इनकी सृष्टि करें। अधिपति और रति बीजों से हूँ अं द्वारा ज्वाला-कराल नीलों के द्वारा भी इनकी सृष्टि करें ।

मातृचक्रे पुरे रम्ये भावयेदीदृशं प्रभुम् ।
कृष्णवर्णमहाघोरं नैरात्म्यासुखदायकम् ॥ २९ ॥
गौर्या हि दक्षिणे कर्त्र्यवसव्ये रोहितस्तथा ।
कृपीटं दक्षिणे चौर्या वामे पाणौ वराहकम् ॥ ३० ॥
वेताल्या दक्षिणे कूर्मं वामे पद्मभाजनम् ।
घस्मर्या दक्षिणे सर्पः वामेन योगपात्रिका ॥ ३१ ॥
पुक्कस्या दक्षिणे सिंहं वामे परशुस्तथा ।
शवर्या दक्षिणे भिक्षुर्वामे खिङ्खिरिका तथा ॥ ३२ ॥
चण्डाल्या दक्षिणे चक्रं वामेन लाङ्गलं तथा ।
डोम्ब्या दक्षिणे वज्रं वामे सव्यतर्जनी तथा ॥ ३३ ॥
अर्धपर्यङ्कनाटचस्था गौर्याद्या द्विभुजा मताः ।
त्रिनेत्रा ऊर्ध्वकेशाश्च पञ्चमुद्राविभूषिताः ॥ ३४ ॥
कृष्णवर्णा भवेद् गौरी चौरी मार्तण्डसन्निभा ।
वेताली तप्तहेमाभा घस्मरी मरकतोपमा ॥ ३५ ॥
पुक्कसी इन्द्रनीलाभा शवरी चन्द्रमणिप्रभा ।
चण्डाली च नभः श्यामा डोम्बी कर्चूरा मता ॥ ३६ ॥

मातृचक्र नामक रमणीय नगरी में ऐसे प्रभु की भावना करें। कृष्ण वर्ण, भयङ्कररूप, नैरात्म्यसुखदायक वे हैं। गौरी के दक्षिण में कत्री, वामभाग में रोहित, दक्षिण में कृपीट, चौरी के बाये हाथ में वराह, वेताली के दक्षिण में कूर्म,

वाम हाथ में कमल, घस्मरी के दक्षिण में सर्प, वामहस्त में योगपात्र, पुक्कसी के दक्षिण हाथ में सिंह, वाम में पत्थर, शवरी के दक्षिण में भिक्षु, वाम में खिड्खिरि का एवं चाण्डाली के दक्षिण हाथ में चक्र, वाम में लाङ्गल (पूँछ), डोम्बी के दक्षिण में वज्र वाम में सकतर्जनी रहती है। अर्ध-पर्यङ्क नाटच में रहती हुई गौरी आदि के दो हाथ हैं, तीन नेत्र, ऊर्ध्व केश, पञ्चमुद्राओं से युक्त होते हैं । गौरी काले वर्ण की है। चौरी सूर्य के जैसे रंगों से युक्त है। वेताली तपे हुए सोने के तरह है, घस्मरी पन्ना रंग की होती है। पुक्कसी इन्द्र धनुष जैसी है। शबरी चन्द्रकान्तमणि सदृशी है। चाण्डाली आकाश जैसी श्यामवर्ण वाली है। और डोम्बी कर्पूर रंगों वाली है।

ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्ररुद्राश्च वैवस्वत विनायकः ।
नैर्ऋतिर्वेमचित्री च गौर्यादीनां तु विष्टरम् ॥ ३७ ॥
बोलकं भूषयित्वा तु भगवन्तं पूज्य भक्तितः ।
नैरात्म्या पच्छते मन्त्रं गाढालिङ्गनचुम्बनैः ॥ ३८ ॥
स्त्रीणां वश्यकरं मन्त्रं दुष्टानां तर्जनं तथा ।
नागाक्षेपकरं मन्त्रं देवासुरविमर्दनम् ॥ ३९ ॥
तदहं कथयाम्येष श्रृणु देवि सुखंददे ।
बुद्धेषु बोधिसत्त्वेषु मया नान्यत्र देशितम्॥ ४० ॥
अस्य मन्त्रस्य यद्भूतं वज्रसत्त्वेन यत्कृतम् ।
बिभेमि सुतरां देवि उपरोधात् त्वयि कथ्यते ॥ ४१ ॥

ब्रह्मा, इन्द्र, उपेन्द्र, रुद्र, यम, विनायक, नैऋति, और वेमचित्री वे सब गौरी आदि योगिनियों के बिस्तर हैं। आसन हैं। वस्त्रों से भूषित करके भक्तिपूर्वक भगवान् की पूजा करके नैरात्यमाता ने गाढ-आलिंगन एवं चुम्बन के साथ उन्हें मन्त्र के विषय में प्रश्न किया। [हे प्रभो!] स्त्रियों को वश में करने वाला, दुष्टें को डराने के लिए, नाग आदि को हटाने के लिए, देव-असुरों को मर्दन करने के लिए मन्त्र अब मैं तुम्हें बताने जा रहा हूँ हे सुख देने वाली देवी तुम सुनो। बुद्ध-बोधिसत्त्व आदि किसी को भी अब तक मैंने देशना नहीं किया है। इन मन्त्र का जो विशिष्ट कृत्य है वज्रसत्त्व ने कर लिया है। मैं, हे देवि निश्चितरूप से डर रहा ।

मण्डलं वर्तयित्वा तु ज्वालामालाकरालिनम् ।
अभिषेकं वज्रगर्भस्य दातुं कृष्यं तिलोत्तमम् ॥ ४२ ॥

मण्डल का निर्माण करने के बाद ज्वाला-माला कराली = जलती हुई आग के लौ पर जैसे वज्रगर्भ को अभिषेक करने के लिए उत्तम पदार्थों का आकर्षण करना चाहिए। या उनके अभिषेक द्वारा सभी आकृष्ट हो जाते हैं।

आयुतजापस्पष्टेन दीर्घनादेन चारुणा ।
हेवज्रयोगयुक्तेन कृष्यन्ते सर्वयोषितः ॥ ४३ ॥

उच्चरूप में हेवज्रयोग से युक्त होकर अयुत जप करने से सारी स्त्रियाँ आकर्षित हो जाती हैं।

लक्षजापेन योगात्मा सर्वकर्म करोत्यसौ ।
हे-कार-वज्रयोगेन निर्विशङ्केन चेतसा ॥ ४४ ॥

योगात्मा व्यक्ति यदि एक लाख जप करे तो सभी कर्म कर सकता है। हेकार रूप वज्रयोग से निर्विशङ्क होकर करना चाहिए।

वेदानामादिमं चैवार्धेन्दुबिन्दुभूषितम् ।
पश्चादष्टाननायेति पिङ्गोर्ध्वकेशवर्त्मने ॥ ४५ ॥
चतुर्विंशति नेत्राय तदनु षोडशभुजाय ।
कृष्णजीमूतवपुषे कपालमालानेकधारिणे ।
अध्यान्तक्रूरचित्ताय अर्धेन्दुदंष्ट्रिणे ॥ ४६ ॥

मारय मारय कारय कारय गर्जय गर्जय तर्जय तर्जय शोषय शोषय सप्तसागरान् बन्ध बन्ध नागाष्टकान् गृह्ण गृह्ण शत्रून् ह हा हि ही हु हू हे है हो हौ हं हः फट् स्वाहा ॥ ४७ ॥

ॐ कार सबसे पहले लगाना चाहिए जिसमें बिन्दु ऊपर लगा हो और अन्तिम में स्वाहा हो, वह मन्त्र - पीले ऊर्ध्व केश युक्त, २० नेत्र, १६ हाथ, काले बादल जैसे शरीर वाले, अनेक कपालों की माला धारण करने वाले, अत्यन्त क्रूर चित्त वाले, आधा चन्द्र जैसे दाँत वाले [हेवज्र को इस मन्त्र से आराधना करता हूँ] - मारो मारो, कराओ कराओ, गर्जन करो गर्जन करो, डराओ डराओ, शोषित करो शोषण करो, सातों सागरों को बाँधो बाँधो, आठ नागों को पकड़ो पकड़ो, शत्रुओं को ह हा हि ही हु हू हे है हो हौ हं हः फट् स्वाहा ।

ततस्तुष्टा तु सा देवी मन्थमन्थानयोगतः ।
पृच्छते मण्डलं रम्यं गाढालिङ्गनचुम्बनैः ॥ ४८ ॥
शास्ता तत्र महाज्ञानी मण्डलं लिखति स्वयम् ।
वज्रपद्म समायोगात् हृष्टचित्तः समाहितः ॥ ४६ ॥
पुटमेकं चतुर्द्वारं नानारश्मिसमाकुलम् ।
चतुस्तोरणसमायुक्तं वज्रसूत्रैर्विभूषितम् ॥ ५० ॥
पञ्चरेखासमायुक्तमष्टौ कलशास्ततो लिखेत् ।
पञ्चरत्नमयैश्चूर्णै रथवा तण्डुलकादिभिः।
श्मशानेष्टकेनापि श्मशानाङ्गारकैस्तथा ॥ ५१ ॥
तन्मध्ये तु लिखेत् पद्ममष्टपत्रं सकेशरम् ।
पुष्करे च लिखेन्नरकं शुक्लवर्णत्रिखण्डिनम् ॥ ५२ ॥

उसके बाद परितुष्ट हुई वह देवी मन्थमन्थानयोग के द्वारा गाढ आलिंगन एवं चुम्बन करने के बाद रमणीय मण्डल के विषय में पूछती है। वहाँ पर महाज्ञानी शास्ता ने स्वयं ही मण्डल का लेखन किया। और वे वज्रपद्म के योग द्वारा एकाग्र एवं प्रसन्न चित्त हुए थे। चार द्वार वाला पुट बनाकर, जिसमें अनेक किरणों का तेज भासित हुआ है, और चार तोरण युक्त, वज्रसूत्र से विभूषित हुआ था, पाँच रेखाओं से समन्वित, उसके बाद आठ कलश उसमें लिखने चाहिए। पञ्चरत्नमयचूर्ण द्वारा अथवा चावल के चूर्ण से भी, श्मशान के ईंट के चूर्ण से भी, अथवा श्मशान के अङ्गार द्वारा भी हो सकता है उसके बीचों बीच अष्टदल युक्त कमल लिखना चाहिए जो केशर से युक्त हो। पत्तों में या कर्णिका में नरक को लिखें, सफेद वर्ण और तीन खण्ड वाला होना चाहिए।

एशानेऽपि लिखेत् शरभं भिक्षुमाग्नेयकोणके ।
चक्रं लिखेच्च नैर्ऋत्यां वायव्यां कुलिशं लिखेत् ॥ ५३ ॥
पूर्वद्वारे तथा कर्त्रीं कृपीटं दक्षिणे लिखेत् ।
पश्चिमे संलिखेत् कूर्ममुरगं चोत्तरे तथा ॥ ५४ ॥
देवीनां वर्णभेदेन अष्टचिह्नं प्रकीर्तितम् ।
मध्ये शुक्लकरोटञ्च विश्ववज्राङ्कितं लिखेत् ॥ ५५ ॥
विजयकलशं ततो दद्यात् पल्लवाग्रं सुवस्त्रिणम् ।

पञ्चरत्नोदरं दिव्यं शालिजैः परिपूरितम् ॥ ५६ ॥
किं बहुना प्रलापेन
यथा तत्त्वसंग्रहे मण्डलविधिस्तथा कर्त्तव्यम् ॥ ५७ ॥

ईशानकोण में 'शरभ' को लिखना चाहिए। आग्नेय कोण में भिक्षु लिखना चाहिए। नैऋत्य में चक्र, वायव्य में कुलिश, पूर्वद्वार में कर्त्री, दक्षिण में डमरु, पश्चिम में कूर्म, उत्तर में सर्प लिखना चाहिए। देवियों के वर्ण भेद से आठ चिह्न प्रसिद्ध हैं। मध्य में विश्व वज्र से अंकित शुक्ल करोट का चिह्न लिखना चाहिए। उसमें विजय कलश स्थापित होना चाहिए, जिसमें अच्छा वस्त्र एवं पत्ते होने चाहिए। पञ्चरत्न उदर में हों, दिव्य शालिधान के चावल से पूर्ण होना चाहिए। ज्यादा बोलने से क्या फायदा है? जैसा तत्त्व संग्रह में मण्डल विधि कहा गया है वैसा ही करना चाहिए।

मण्डले च प्रवेष्टव्या विद्या चाष्टौ महासुखाः ।
द्वादशाब्दा द्विरष्टा च हारनूपुरभूषिताः ॥ ५८ ॥
जननी भगिनी चैव दुहिता भागिनेयिका ।
मातुलस्य तथा भार्या मातृ भगिनी च श्वसृका ।
पितुर्भगिनी तथा चैव अष्टौ विद्याः प्रकीर्तिताः ॥ ५९ ॥
आसां पूजयेद् योगी गाढालिङ्गनचुम्बनैः।
कर्पूरं च पिबेत्तत्र तेन मण्डलं प्रोक्षणम् ॥ ६० ॥
तासां पाययेद् योगी लघु सिद्धिमवाप्नुयात् ।
मदनं तत्र पातव्यं भक्षयेद् बलशालिजम् ॥ ६१ ॥
तां च विवस्त्रकां कृत्वा भगं चुम्बयेन्मुहुर्मुहुः ।
ताभिश्च वृष्यते बोलं गीयते नृत्यते परम् ॥ ६२ ॥
क्रीडा च क्रियते तत्र बोलकक्कोलयोगतः।
पश्चाद् द्वितीयप्रहरे शिष्यं तत्र प्रवेशयेत् ॥ ६३ ॥

उस मण्डल में महासुख स्वरूप आठ विद्याओं को प्रवेश कराना चाहिए। वहाँ पर १२ वर्षात्मक अवधि दो गुना अर्थात् २४ वर्षात्मक - हार-नूपुर से भूषित जननी, भगिनी, दुहिता (लड़की) भांजी, भाभी, छोटी माँ, सास, पिता की बहन, ये आठ विद्या कहलाती हैं। यह नाम मात्र है। स्वरूप से नहीं। गाढ

आलिंगन चुम्बन आदि द्वारा योगी इनकी पूजा करे। कर्पूर का पान करें, उसी से मण्डल का प्रोक्षण करना चाहिए। योगी उन सभी विद्याओं को रस का पान कराये जिससे शीघ्र ही सिद्धि मिल सकती है। उस अवसर पर मदन रस (सुरत रस, मद्य रस) का पान करना चाहिए। जिससे वे सब पीने वाले बलशाली हो जाते हैं। उन सभी विद्याओं को विवस्त्र करके बारम्बार उनके भगों को योगी चुम्बन करें। वे भी उन योगियों को सुरत से आनन्दित करते हुए नृत्य और गान करें। वह परम आनन्द दायक होगा। मद्य और मैथुन जन्य योग के द्वारा वहाँ क्रीडा की जाती है। उसके बाद दूसरे प्रहर में उस मण्डल में शिष्यों को प्रवेश करायें।

अक्षिं प्रच्छाद्य वस्त्रेण पश्चान्मण्डलदर्शनम् ।
अभिषेकं दीयते तत्र निशीथे विजने गृहे ॥ ६४ ॥

उस शिष्य को सर्वप्रथम कपड़े के टुकड़े से उसके आँख ढक्कर मण्डल में प्रवेश करायें उसके बाद उसे अभिषेक करें वह रात में होना चाहिए और एकान्त गृह में ही करना चाहिए ।

यथा कथितास्त्वभिषेका आचार्यादि-प्रभेदतः ।
स्तुति-पूजा यथाख्याता प्रागुन्नेया सुशिष्यकैः ॥ ६५ ॥

जैसे जैसे अभिषेक बताये गये हैं आचार्य और परम्परा के भेद से, जैसे स्तुति और पूजा प्रसिद्ध हैं। उन सभी का वहाँ पर प्रयोग करना चाहिए सुशिष्यों के द्वारा।

तत्त्वं च देशयेत् तत्र विरमादि-परमान्तकम् ।
गोपितं सर्वतन्त्रेष्वन्तमन्तं प्रकाशितम् ॥ ६६ ॥

उस अवसर पर शिष्य को विरमादि से परम तक जो रहस्य तन्त्रों में प्रकाशित-गोपित किया गया है उसे देशना करनी चाहिए।

पृच्छते तत्र सा देवी वज्रपूजाप्रयोगतः ।
तत्क्षणं कीदृशं देव कथयस्व महाप्रभो ॥ ६७ ॥

उक्त बेला में वज्रपूजा प्रयोग द्वारा आह्लादित भगवान् को देवी ने पूछा हे प्रभो वह क्षण कैसा होता है जब यह सब किया जाता है कृपया आप उपदेश करें।

भगवानाह-

आइ न अन्त न मह्यु तहिं नत्र भव नत्र निर्वाण ।

एहु सो परममहासुह नउ पर नउ अप्पाण ॥ ६८ ॥

भगवान् ने कहा - यहाँ 'आ' 'इ' दोनों नहीं हैं। वे दोनों क्रमशः परम विराम हैं। संसार और निर्वाण में भी वे दोनों ही हैं। राग-विराग भी वे ही हैं। अर्थात् न भव है, न निर्वाणं। यह केवल महासुख है। सहजानन्द रूप सुख है। यहाँ न ख्याति-भ्रम है, न ग्राह्य और न ग्राहक ही है। न आदि न अन्त ही है। उत्तम सुख मात्र अद्वय होता है वही यहाँ उस अवसर में भासित होता है ।

स्वसव्येतरपाणैस्तु वृद्धा वानामिका च या ।

ताभ्यां प्रपीडयेद् योगी संभोगे लहरीद्वयम् ॥ ६९ ॥

दक्षिण एवं वाम दोनों हाथों से वृद्ध अंगुष्ठ या अनामिका अंगुली से - वे दोनों से संभोग के अवसर पर योगी दोनों लहरियों (श्वास-प्रश्वास) को तत्काल ही बन्द करे और छोड़ देवें। उसे घर्षण करें।

पश्चादुत्पद्यते ज्ञानं कुमारीसुरतं यथा ।

किमप्युत्पद्यते तत्र मूर्खस्य स्वप्नं यथा ।

परमान्तं विरमाध्यं शून्याशून्यं तु हेरुकम् ॥ ७० ॥

बाद में वह ज्ञान उत्पन्न होता है। जैसे कुमारी को कोई उसकी सखी सुरत के विषय में बताती है किन्तु वह उस समय नहीं जान पाती। वह कुछ ऐसा ही होता है जैसा मूक व्यक्ति का स्वप्न होता है। जैसे मूक व्यक्ति स्पष्ट देखे हुए स्वप्न को भी नहीं बता सकता वैसे ही गुरु लोग भी सहजानन्द के विषय में नहीं बता सकते। वह ज्ञान परमान्त, विरमान्त, शून्याशून्य है और वही हेरुक भी है। हेरुक का ज्ञान भी है। क्रमशः परमान्त - परमानन्द से पर, मध्यदिन जैसा स्पष्ट। शून्याशून्य - ग्राह्य-ग्राहक रहित। हेरुक अर्थात् द्वय-ग्राह्य नाशक।

द्वितीयकल्पराज में पञ्चम पटल पूर्ण हुआ।

हेवज्रपटलाभिधानपटलः षष्ठः

देवीं वै गाढमालिङ्ग्य क्षिप्त्वा बोलं कपालके ।
गाढं कुचग्रहं कृत्वा संवृष्य नरनासिकाम् ॥ १ ॥
दशनेनौष्ठमापीड्य कक्षं कृत्वा नखक्षतम् ।
सम्पुटं सौख्यमासाद्य पञ्चमुद्रां प्रकाशते ॥ २ ॥
गुर्वाचार्येष्टदेवस्य नमनार्थं चक्रिका धृता ।
दुर्भाषस्याश्रवणाय गुरोर्वज्रधरस्य च ॥ ३ ॥
श्रवणयोः कुण्डलं धार्यं मन्त्रं जप्तुं च कण्ठिका ।
रुचकंप्राणिवधं त्यक्तुं मुद्रां भजितुं च मेखलम् ।
पञ्चबुद्धस्य मुद्रेण शरीरं मुद्रितं सदा ॥ ४ ॥
प्रहसनं ततः कृत्वा दन्तैः संपीड्य चाधरम् ।
पृच्छते तत्र सा देवी हेवज्रं सहजरूपिणम् ॥ ५ ॥
कतरेण विधानेन कया क्रियया तथा प्रभो ।
हेवज्रस्य पटं कार्यं कथयस्व महासुख ॥ ६ ॥

देवी का गाढ आलिङ्गन कर उनके शिर में हाथ रखकर गाढे रूप में दोनों कुचों का मर्दन करते हुए नर नासिकाको छुते हुए, दाँतों से ओठों को आघात करते हुए और नखक्षत करके सम्पुटों अर्थात् योनि में सुख का आस्वादन करके पञ्चमुद्राओं को प्रकाशित करते हैं ।

गुरु–आचार्य और इष्ट देवताओं को नमस्कार करने के लिए चक्रधारण करते हैं। खराब वाणी को न सुनने के लिए और गुरु वज्रधर की वाणी को भी न सुनने के लिए दोनों कानों में कुण्डल धारण करना चाहिए। मन्त्र जाप के लिए माला और प्राणिवध त्यागने के लिए रूचक धारण करना चाहिए। मुद्रा के लिए मेखला धारण करना चाहिए। पञ्च बुद्धों के मुद्राओं से शरीर हमेशा वश में मुद्रित अवस्था में रहना चाहिए। उसके बाद प्रहसन करके, दातों से अधरों का आस्वादन करते हुए हेवज्र को जो सहज सुख में मग्न हैं को वह

देवी पूछती है - हे महासुख रूप हेवज्र! किस विधान से, किस क्रिया से, हेवज्र का षट् कर्म करना चाहिए। आप बतायें ।

भगवानाह-

समयिचित्रकरेणेह साधकेनापि समयिना ।
लिखितव्यं पटं घोरं नरकस्थैः पञ्चवर्णकैः ॥
शवकेशस्य कुच्चा च लिखनीयं पटं गुरु ॥ ७ ॥

भगवान् ने कहा - समान समय-सिद्धान्त-मार्ग में रहने वाला साधक उसी समान सिद्धान्त-काल से घोर चित्र लिखे रत्न में स्थित पञ्च वर्णों के द्वारा। शव के केश के कूची से गुरु का चित्र भी लिखना चाहिए।

सूत्रं च यया कार्यं कर्त्तव्यञ्च पटं यया ।
तयापि समयिन्या वै समयाधिष्ठानगोगतः ॥ ८ ॥

जिससे सूत्र निर्मित किया जाता है उसी से वस्त्र और चित्र भी बनाना चाहिए। उसी समय-समता से समयाधिष्ठान योग द्वारा ही निर्मित होना चाहिए।

मासि मासि चतुर्दश्यां कृष्णायां विजने गृहे ।
मध्याह्ने क्रूरचित्तेन किंचिन्मदनपानतः ॥ ९ ॥
अङ्गे निरंशुकं भूत्वा नग्नीभूय तथा पुनः।
उत्सृष्टेना-पवित्रेण भक्षयेत् समयं ततः ॥ १० ॥
निजमुद्रां स्थाप्य वामेन चारुवक्त्रां कृपावतीम् ।
रूपयौवनसौभाग्यां सुपुष्पां साधक-प्रियाम् ॥ ११ ॥

प्रत्येक महीने के कृष्णपक्ष - चतुर्दशी तिथि में, एकान्त गृह में मध्याह्नकाल में क्रूरचित्त युक्त होकर, थोड़ा मदिरापान करके, अङ्गों में निरङ्कुश होकर फिर नग्न होकर, उत्सृष्ट एवं अपवित्र रूप से समय का भक्षण करें। वाम पार्श्वस्थ जंघा में अपने अधीन करके कृपावती अच्छी सुन्दर मुखवाली रूप यौवन सौभाग्य युक्त रजोवती साधकप्रिया प्रज्ञारूप स्त्री को रखकर ही साधना में संलग्न होना चाहिए।

द्वितीयकल्पराज में यह षष्ठ पटल पूर्ण हुआ।

भोजनपटलः सप्तमः

अथाह तत्र सा देवी बोलकक्कोलयोगतः ।
ओष्ठं दन्तेन संपीड्य कथं भवति पुस्तकम् ।
वज्रपद्मसमायोगात् तुष्टो देवः प्रकाशते ॥ १ ॥

अब, इसके बाद बोलकल्लोल योग – सुख जन्य आनन्द योग में अवस्थित देवी होठों के दन्तों से पीडित करते हुए प्रश्न करती है कि पुस्तक कौन सा कहलाता है और यह कैसे होता है। उसी समय वज्रपद्म समायोग द्वारा भगवान् तुष्ट भगवान् हेवज्र उसमें प्रकाश डाल रहे हैं।

भगवानाह–

शृणु देवि महाभागे पुस्तकं कथयाम्यहम् ।
भूर्जपत्रे लिखेत् समयी द्वादशाङ्गुलपुस्तकम् ।
महामधुमसिं कृत्वा लेखन्यां मानुषास्थिभिः ॥ २ ॥

भगवान् ने कहा – हे देवि तुम सुनो पुस्तकों के विषय में मैं कहता हूँ। [वह तन्त्र और मन्त्र] पुस्तक भोजपत्रों में लिखना चाहिए। और द्वादश अङ्गुल परिमाण वाला होना चाहिए। महामधु को स्याही बनाकर मनुष्यों के हड्डी से लिखना चाहिए।

पुस्तकञ्च पटञ्चैव यदि वा दुन्दुरः पश्यति ।
इह जन्मनि न सिद्धिः स्यान्न वा परलोकगोचरे ॥ ३ ॥

पुस्तक अथवा चित्र (कपड़ा) यदि दुन्दुर देख लेता है तो इस जन्म और अन्य जन्म में भी सिद्धि नहीं होती। इसीलिए इसे अत्यन्त गोपनीय ही रखना चाहिए।

सम्प्रदायप्रयुक्तस्य दर्शनञ्च कदाचन ।
गोपितव्यं कचे कक्षे पुस्तकमध्वगोचरे ॥ ४ ॥

सम्प्रदाय में प्रवृत्त पुस्तकों को या शास्त्र या दर्शन को कभी कभी यदि यात्रा में हो तो अपने बगल में दबाकर रखना चाहिए। किन्तु दिखाना नहीं चाहिए ।

भगे लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य चुम्बयित्वा मुहुर्मुहुः ।
महासुखं समासाद्य वज्री भोजनमादिशेत्॥ ५ ॥

स्त्री योनि – भग में लिङ्ग को प्रतिष्ठित करके बारम्बार चुम्बन करते हुए महासुख में अवस्थित होकर वज्रसत्त्व द्वारा भोजन का आदेश देना चाहिए।

शृणु देवि विशालाक्षि भोजनं गणमण्डले ।
यत्र भुक्ते भवेत् सिद्धिः सर्वकामार्थसाधकी ॥ ६ ॥
श्मशाने गिरिकुञ्जे वा मानुषस्य पुरे तथा ।
अथवा विजने प्रान्ते इदं भोजनमारभेत् ॥ ७ ॥
कल्पयेदासनं तत्र नवाख्यं शवरूपिणम् ।
अथवा व्याघ्रचर्म च श्मशानकर्पटं तथा ॥ ८ ॥
मध्ये हेवज्ररूपात्मा योगिनीनां ततो न्यसेत् ।
स्थानं ज्ञात्वा यथापूर्वं दिशासु विदिशासु च ॥ ९ ॥
व्याघ्रचर्मोपरि भुञ्जीत समयस्य मालतीन्धनम् ।
भक्षं च भक्षयेत् तत्र राजशालिं प्रयत्नतः ।
भुक्त्वा भुक्त्वा पुनस्तत्र पूज्यन्ते तत्र मातरः ॥ १० ॥

हे देवि विशालाक्षि ! तुम सुनो ! गजमण्डल में भोजन करने से सिद्धि होती है और सभी कामनायें पूर्ण होती हैं। श्मशान, पर्वतकुञ्ज, अथवा मनुष्यों के नगरों में अथवा एकान्त स्थलों में यह भोजन आरम्भ करना चाहिए। वहाँ शव को ही नौका के रूप में कल्पना करते हुए उसे ही आसन बनाना चाहिए। अथवा व्याघ्र चर्म या श्मशान के कपड़े या लोथों को ही आसन के रूप में लेना चाहिए। बीच में हेवज्र को रखना चाहिए और योगिनियों को भी उसी आसन पर आवाहन करना चाहिए। उनके अपने-अपने दिशा और विदाशात्मक आसन होते हैं वहीं पर स्थान देना चाहिए। व्याघ्र चर्म के ऊपर खाना चाहिए। शालिधान्योत्पन्न चावल को वहीं पकाना चाहिए। यत्नपूर्वक भोजन खाना चाहिए। बारम्बार खाकर ही मातायें पूजी जानी चाहिए।

यदि वा माता भगिनी भागिनेयी च श्वसृका ।
पूजयेन्निर्भरं तासां सिध्यन्ते गणमण्डले ॥ ११ ॥

यदि माता, बहन, भांजी और सास आदि माताओं की पूजा की जाती है इस गणमण्डल में तो उनकी सारी कामनायें पूरी हो जाती हैं।

एकखण्डं महानरकं दिव्यं मदनपूरितम् ।
गुरवे दद्यान्महाभागी वन्दयित्वा स्वयं पिबेत् ॥ १२ ॥

उसमें से एकभाग महानरक नामक दिव्य, जो मदनरस से परिपूरित होता है उसे अपने गुरु को देना चाहिए। और गुरु की वन्दना के बाद उनसे आज्ञा लेकर स्वयं भी पीना चाहिए ।

गृह्णीयात् पद्महस्तेन दद्यात् तेनैव पाणिना ।
मुहुर्मुहुः प्रणामं च कुर्वन्ति तत्र साधकाः ॥ १३ ॥

कमलपूर्ण हाथों से उसे ग्रहण करें, और उसी हाथ से गुरु को निवेदनपूर्वक देवें। बारम्बार गुरु को प्रणाम भी करे साधक, जिससे सारी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

द्वितीयकल्पराज में सप्तम भोजन पटल पूर्ण हुआ।

विनेयपटलो नामाष्टमः

तत्र पृच्छन्ति योगिन्यो महामुद्रा तु कीदृशी ।
संवृत्याकाररूपेण कथयस्व सुखंदद ॥ १ ॥

उस अवसर पर योगिनियाँ पूछ रही हैं कि महामुद्रा कैसी होती है। और संवृतिरूप से या संवृति रूप आचार-प्रियवाणी युक्त उपदेश कैसे होते है। हे सुखदायक प्रभो कृपया बतायें।

भगवानाह -
नातिदीर्घा नातिह्रस्वा न कृष्णा न च गौरिका ।
पद्मपत्रनिभाकारा श्वासस्तस्याः सुगन्धकः ॥ २ ॥
प्रस्वेदं च सुगन्धि स्यान्मृगनाभिसमप्रभम् ।
पद्मं चेन्दीवरं गन्धं क्षणात् पद्ममिवाचरेत्॥ ३ ॥
कर्पूरसिह्लयोस्तस्याः सुगन्धं लक्षयेद् बुधः ।
उत्पलस्य भवेद् गन्धं वायसागुरुसन्निभम् ॥ ४ ॥
धीरा अचञ्चला चैव प्रियवादी मनोरमा ।
सुकेशा त्रिवलीमध्या प्राकृतैः पद्मिनी मता ॥
तां च प्राप्य भवेत् सिद्धिः सहजानन्दरूपिणी ॥ ५ ॥

भगवान् ने कहा - [महामुद्रा के विषय में] जिसको पाकर सिद्धि होती है ऐसी स्त्री के साथ ही साधना करने से सिद्धि होती है वह - अति दीर्घा न हो, अति छोटी भी नहीं होनी चाहिए। अति काली भी न हो। अति गोरी भी न हो। उसका श्वास प्रश्वास का गन्ध कमल के गन्ध जैसा सुगन्धित होना चाहिए। उसके पसीनों से भी गन्ध आना चाहिए। और वह कस्तूरी-मृग जैसा गन्ध उसके शरीर से आना चाहिए। राज कमल जैसा सुगन्ध भी होना चाहिए। क्षण क्षण में वह गन्ध बदलते रहना चाहिए। कपूर और गुग्गुल जैसा सुगन्ध कभी कभी होना चाहिए। अगरु, धूप आदि जैसा गन्ध भी उससे आना ही चाहिए। वह स्त्री धीर, अचञ्चल, प्रियवादिनी, मनोरमा, सुकेश, पेट में तीन वलि वाली, प्रकृति से ही पद्मिनी स्वभाव वाली होनी चाहिए। जिसके सहयोग से सहजानन्द की सिद्धि होती है।

अथाह नैरात्म्या योगिनी भगवन् प्रणिधानं कीदृशं कर्त्तव्यम् ।
भगवानाह-
कुलजन्मा अनुन्मादि समयी हेवज्रदेशकः ।
कृपावान् गुरुभक्तश्च भवेयं जन्मजन्मनि ॥ ६ ॥
वज्रघण्टारणत्पाणिर्गम्भीर धर्मपाठकः ।
योषिच्छुक्रसमाहारी भवेयं जन्मजन्मनि ॥ ७ ॥
तत्र तुष्टा तु सा देवी इदं वचनमब्रवीत् ।
दुर्दान्ता दुन्दुराः सत्त्वा विनेयं यान्ति केन हि ॥ ८ ॥

इसके बाद नैरात्म्य योगिनी ने पूछा हे भगवन्! प्रणिधान प्रार्थना कैसी होनी चाहिए? भगवान् ने कहा - अच्छे कुल में जन्म, उन्माद रहित, सिद्धान्तनिष्ठ, हेवज्र का आराधक, कृपायुक्त और गुरु भक्त प्रत्येक जन्मों में मैं होऊँ। वज्र घण्टा रत्न हाथों लेने वाला, गंभीर, धर्मपाठक, स्त्रियों के शुक्रों में विहार करने वाला, प्रत्येक जन्म में मैं होऊँ। इससे खुश होकर वह देवी यह वचन बोली - अति उद्धत, दुष्ट प्रवृत्ति के प्राणी किस प्रकार विनयी होते हैं कृपया आप बतायें।

भगवानाह-
पोषधं दीयते प्रथमं तदनु शिक्षापदं दशम् ।
वैभाष्यं तत्र देशेत सूत्रान्तं वै पुनस्तथा ॥ ६ ॥
योगाचारं ततः पश्चात् तदनु मध्यमकं दिशेत् ।
सर्वमन्त्रनयं ज्ञात्वा तदनु हेवज्रमारभेत् ।
गृह्णीयात् सादरं शिष्यः सिध्यते नात्र संशयः ॥ १० ॥

भगवान् ने कहा - सबसे पहले प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व ही पूर्णमासी के दिन उन्हें अष्ट शिक्षापदों की शिक्षा देना चाहिए। उसके बाद दश शिक्षा पदों का उपदेश देना चाहिए। उसके बाद विभाषा शास्त्र की देशना करनी चाहिए। फिर सूत्रान्त का उपदेश होना चाहिए। उसके बाद योगाचार, फिर माध्यमिक, फिर मन्त्रनय उसके बाद हेवज्र का उपदेश-शिक्षा देनी चाहिए। वह शिष्य इन सभी विषयों को आदर पूर्वक ग्रहण करें जिससे उसे सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

द्वितीयकल्पराज में अष्टम विनेयपटल पूर्ण हुआ।

मन्त्रोद्धारपटलो नवमः

अथातः संप्रवक्ष्यामि संपुटोद्घातलक्षणम् ।
येन विज्ञातमात्रेण साधकः सिद्धिमाप्नुयात् ॥
साध्यस्य नाभिमूले तु हस्तेनोत्पाटयेद् व्रती ॥ १ ॥

इतना सब कहने बाद यह अवसर उपस्थित हुआ है संपुट के उद्घाटन के लिए और उसका लक्षण भी बताना उचित है इसीलिए संपुट उद्घाटन हेतु यह प्रकरण प्रारंभ किया जाता है। जिसके ज्ञान मात्र से साधक सिद्ध हो जाता है। नाभिमूल, मणिपूरचक्र के अग्रभाग में नाभि के अन्तस्थल में ध्यान द्वारा उस केन्द्र का उद्घाटन करना चाहिए।

हेरुकप्रतिरूपेणाध्यात्मक-क्रूरचेतसा
भावनामात्रकेनैव बुद्धोऽपि नश्यते ध्रुवम् ॥ २ ॥

हेरुक का ही रूप बनाकर आध्यात्मिक अर्थात् अत्यन्त तीव्र-क्रूर दृष्टि युक्त होकर भावना करने से स्वयं बुद्ध भी वश में हो जाते हैं तो अन्य लोकों की क्या कथा शेष रह जाती है।

मारणं क्रियते कृपया श्रावयित्वा गुरौ मुनौ
शासनायापचारी च गुरुबुद्धस्य नाशकः ॥ ३ ॥

गुरु और मुनियों को सुनाकर, बतलाकर मारण का प्रयोग किया जाता है। इस कर्म से बुद्धशासन का विरोधी, गुरु और बुद्ध का नाशक भी नष्ट हो जाता है।

यत्र दृष्ट्वा यथारूपमधोमुखं तु भावयेत् ।
रक्तमुद्वमन्तं चैव कम्पयन्तं समूर्धजम् ॥ ४ ॥

यहाँ पर ठीक से जिसको मारण करके हटाना है उसके रूप का ध्यान करते हुए उसे अधोमुख कल्पना करके उस पर मारण का प्रयोग करें। वह रक्तवमन करते हुए बालों के साथ कम्पन करते हुए समाप्त हो जाता है।

तस्य मार्गे सूचीं ध्यायात् प्रविशन्तीं वह्निरूपिणीम् ।
हृदये हुताशनबीजं दृष्ट्वा मारयेत् तत्क्षणात् ॥ ५ ॥

उसके मार्ग में वज्रसूची का ध्यान करते हुए वह्निरूपिणी योगिनी का प्रवेश होगा और हृदय में अग्नि के बीज का प्रवेश कराकर उसी क्षण मारण करें।

अस्मिन् तन्त्रे न होतव्यं मुद्राबन्धक्रिया न च ।
पठितसिद्धं महातन्त्रं ध्यानमात्रेण सिध्यति ॥ ६ ॥
रहस्यं परमं वक्ष्ये श्रृणु देवि वरानने ।
भवस्य शोधनं रम्यमविकल्पसिद्धिदायकम् ॥ ७ ॥
पश्य देवी महारत्नं ज्वालामालाकुलं वपुः ।
अयोग्यः स्यादविद्धेन विद्धः सन् रुचिदायकः ॥ ८ ॥
तद्वत् संसारकं रत्नं पञ्चकामगुणैर्युतम् ।
अविशुद्धं विषतां याति विशुद्धं पीयूषवद् भवेत् ॥ ९ ॥
संसारं हेरुकाकारं जगदुत्तारणं प्रभुम् ।
येन रूपेण संभूतं तदहं वच्मि श्रृण्वताम् ॥ १० ॥

इस कृत्यानुष्ठानात्मक तन्त्र में हवन नहीं करना और मुद्रा, बन्ध और कोई अन्य क्रिया भी निषिद्ध है। पढ़ने से ही यह तन्त्र सिद्ध है केवल ध्यान मात्र से सारे कर्म सम्पन्न हो जाते हैं । हे देवि परम रहस्य मैं तुम्हें बताने जा रहा हूँ श्रद्धा से सावधान होकर सुनो। भव का शोधन अत्यन्त रमणीय है और वह अविकल्प तत्त्व का सिद्धिदायक भी है। हे देवी महारत्न जो अग्नि ज्वाला से आलिप्त शरीर है उसे देखो, यदि वह विद्ध (छेद करना) नहीं है तो वह अयोग्य है और छेद करने के बाद परम आनन्द दायक हो जाता है वह उत्तम रत्न ही है। उसी प्रकार संसार रूपी यह रत्न भी पाँच प्रकार के काम गुणों से युक्त हैं। यह रत्न जब तक विशुद्ध नहीं होता तब तक विष के बराबर होता है और शुद्ध होने पर अमृत के तरह हो जाता है। यह संसार हेरुक के आकार का है उस उत्तरण हेरुक के द्वारा ही होता है। जिस रूप से उससे उद्धार होता है वह मैं बताता हूँ तुम सुनो।

कृपया लोचने रक्ते कृष्णाङ्गो मैत्रिचित्ततः ।
संग्रहवस्तुचतुष्केन चत्वारश्चरणाः स्मृता ॥ ११ ॥

महाकृपा के कारण उनके आँख लाल हैं, शरीर कृष्णवर्ण का है चित्त में मैत्री भावना है। चार संग्रहणीय वस्तु के प्रतीक स्वरूप चार पैर हैं ।

अष्टास्या विमोक्षा अष्टौ शून्यताः षोडशभुजाः ।
मुद्रेण पञ्चबुद्धाः स्युः क्रुद्धो दुष्टविनेयतः ॥ १२ ॥
मांसेन पुक्कसी ख्याता शवरी रक्तेन कल्पिता ।
चण्डाली शुक्रमित्युक्तं डोम्बी च मेदमज्जयोः ।
चर्म बोध्यङ्गसप्तं तु अस्थि सत्यचतुष्टयम् ॥ १३ ॥

इनके मुख आठ हैं क्योंकि मोक्ष भी आठ ही है। १६ हाथ हैं क्योंकि शून्यता १६ ही हैं। मुद्रण के कारण पाँच बुद्ध हैं। दुष्टों को अनुशासित करने के लिए ही क्रुद्ध रहते हैं। इनका मांस पुक्कसी के कारण प्रसिद्ध हैं। रक्त इनका शबरी स्वरूप है। शुक्र चाण्डाली है। मेदा और मज्जा के कारण डोम्बी है। बोधि के अङ्ग ही चर्म है। चार आर्य सत्य हड्डियाँ हैं ।

देव्युवाच -
मन्त्रोद्धारं भवेत् कीदृक् कथयस्व महासुख ।
येन मन्त्रेण जन्तूनां कर्माणि यान्ति सिद्धिताम् ॥ १४ ॥
भगवानाह महावज्री वज्रसारवपुर्महान् ।
श्रृणु देवि महाभागे मन्त्रं ते कथयाम्यहम् ॥ १५ ॥

देवी ने पूछा - हे महासुख स्वरूप प्रभो! मन्त्रों का उद्धार कैसे होगा। जिन मन्त्रों के कारण प्राणियों के कर्म सिद्ध होते हैं कृपया आप बतायें। भगवान् ने कहा महावज्रसत्त्व हैं, उनका शरीर भयङ्कर विशाल है, उनका मन्त्र मैं बताता हूँ हे देवि तुम सुनो।

आदौ वैरोचनं दत्त्वा ऊष्माणां च चतुर्थकम् ।
पुक्कसीश भनं दिव्यं शून्याक्रान्तं शुक्लवर्णम् ।
स्वाहान्तं नियोजयेत् ।
अनेन लक्षजापेन स्तम्भयेज्जगत् सर्वदा ॥ १६ ॥

सबसे पहले वैरोचन अर्थात् ॐ कार को लगाकर षष्ठ स्वर ॐ लगायें और उसमें अनुस्वार हो और अन्त में स्वाहा होना चाहिए। इस प्रकार ॐ ॐ स्वाहा यही मन्त्र है जो शुक्ल वर्णात्मक है। इसके एक लाख जाप करने से सारा संसार स्तम्भित हो जाता है।

आदौ वर्णाधिपं दत्त्वा तदनु खेचरीं ततः ।
स्वाहान्तं योजितं कृत्वा बुद्धानपि वशीकरेत् ॥ १७ ॥
वेदानामादिमं दत्त्वा प्रथमस्य द्वितीयकम् ।
शून्यं स्वाहान्तं योजयेद् बुद्धानामप्युच्चाटयेत् ॥ १८ ॥
आदौ वैरोचनं दत्त्वा द्वितीयस्य तृतीयकम् ।
र-युक्तं वारिभूषितं शून्यं स्वाहान्तसंयुक्तम् ।
द्वेषयेत् सर्वमानुषान् ॥ १९ ॥

सबसे पहले ॐ कार हो, उसके बाद १५वाँ स्वर होना चाहिए। अग्रिम में स्वाहा लगाना चाहिए इससे स्वयं बुद्ध भी वश में हो जाते हैं।

'ॐ खं जं स्वाहा' इस मन्त्र के जप करने से बुद्ध का भी उच्चाटन हो जाता है। सबसे पहले ॐ लगाकर 'खं जं इ स्वाहा' यह मन्त्र जपने से सभी मनुष्य द्वेष से युक्त हो जाते हैं अर्थात् परस्पर कलह में लग जाते हैं।

आदौ वर्णेश्वरं दत्त्वा पञ्चमस्य तृतीयकम् ।
सशून्यं डाकिनीयुक्तं स्वाहान्तमभिचारुकम् ॥ २० ॥

सबसे पहले वर्णेश्वर अर्थात ॐ लगावें फिर ब उस पर बिन्दु और ॐ फिर स्वाहा। यह मन्त्र अभिचारक कहलाता है।

वर्णज्येष्ठं पुनर्दत्त्वा हूं-काररक्तसन्निभम् ।
स्वाहान्तं कार्षयेत् सद्य रम्भादीनां तिलोत्तमाम् ॥ २१ ॥

ॐ हूँ स्वाहा इस मन्त्र से रम्भा आदि और तिलोत्तमादि अप्सरायें भी वशीभूत हो जाती हैं।

आदौ मोहकुलं दत्त्वा घु-कारं संप्रयोजयेत् ।
स्वाहान्तं च पुनः कृत्वा मारयेत् सुरमानुषान् ॥ २२ ॥

'ॐ घुः स्वाहा' इस मन्त्र से मनुष्य असुर आदि सभी को मारा जा सकता है ।

प्रथमस्य प्रथमं तु वज्रडाकिनीयोगितम् ।
आदौ वैरोचनं दत्त्वा अन्तस्थानां द्वितीयकम् ॥ २३ ॥
वज्रडाकिनीसंयुक्तं पुनः प्रथमस्याग्रकम् ।
वज्रडाकिनीसंयुक्तं अन्तस्थानां तृतीयकम् ॥ २४ ॥
पुनस्तेनैव संयुक्तमुपरि चौरीभूषितम् ।
ह्रीःकारं योजयेत्तत्र स्वाहान्तं पुनराचरेत् ।
कुरुकुल्लामन्त्रः ॥ २५ ॥
ओंकारादि चतुर्थस्य तृतीयं चौरीभूषितम् ।
अन्तस्थानां चतुर्थकं पिचुवज्रप्रयोजितम् ॥ २६ ॥
ऊष्माणां च चतुर्थकं पुक्कस्याश्च विभूषितम् ।
शून्याक्रान्तं त्रिगुणितं पञ्चमस्य द्वितीयकम् ।
तृतीयस्य प्रथमं स्वाहान्तं हेवज्रस्य हृदयम् ॥ २७ ॥
वैरोचनादि
ज्वलज्वलयोजितं पञ्चमस्य चतुर्थं तु ।
अन्तस्थानां प्रथमेन युक्तं घस्मरी-भूषितम् ॥ २८ ॥
ऊष्माणां च चतुर्थकं वज्रडाकिनी-भूषितम् ।
शून्याक्रान्तं त्रिगुणितं पञ्चमस्य द्वितीयकम् ।
तृतीयस्य प्रथमं स्वाहान्तं चतुर्भुजस्य मन्त्रः ॥ २९ ॥
वैरोचनादि
प्रथमस्य च प्रथममभ्यन्तरगौरीशोभितम् ।

तृतीयस्य च प्रथममभ्यन्तरगौरीभूषितम् ॥ ३० ॥

'ऊँ कं रं स्वाहा' और 'ऊँ कं लं स्वाहा' तथा ऊँ कं रं ए ह्री स्वाहा यह कुरुकुल्ला अर्थात् तारा का मन्त्र है। ऊँ दं वं स्वाहा। ऊँ हं फं टं स्वाहा। यह मन्त्र हेवज्र का हृदय मन्त्र है। ऊँ भं यं ओं स्वाहा। 'ऊँ हं बं रं स्वाहा' यह चतुर्भुज हेवज्र का मन्त्र है। ऊँ कं टं ई स्वाहा।

द्विगुणीकृत्य पञ्चमस्य तृतीयं द्वितीयस्य तृतीयं वह्निभूषितम्। हूं-कारत्रययोजितम्। पञ्चमस्य द्वितीयं तृतीयस्य प्रथमं स्वाहान्तं षड्भुजस्य मन्त्रः॥ ३१ ॥

'ऊँ बं बं ठं ठं हूँ हूँ हूँ भं भं स्वाहा' यह षट्भुजायुक्त हेवज्र का मन्त्र है।

वैरोचनादि चतुर्थस्य प्रथमं हुताशनसंयुक्तं वेतालीविभूषितम्। अन्तस्थानां तृतीयकं घस्मरीभूषितम्। प्रथमस्य प्रथममन्तस्थानां प्रथमेन युक्तं वज्राभूषितम् ॥ ३२ ॥

ऊँ तं ऐं वज्रा आ स्वाहा॥ ३२ ॥

क्ष-कारं चौरीभूषितम्। पञ्चमस्य प्रथमम्। ऊष्माणां चतुर्थकं वज्रडाकिनीभूषितम्। शून्याक्रान्तं त्रिगुणितं फट् स्वाहान्तं द्विभुजस्य। ॥ ३३ ॥

'ऊँ क्षं पं वं वं वं फट् स्वाहा' यह द्विभुज हेवज्र का मन्त्र है।

नैरात्म्या प्रथमस्य प्रथमं द्वितीयस्य प्रथमं तृतीयस्य प्रथमं चतुर्थस्य प्रथमं पञ्चमस्य प्रथमम् अन्तस्थानां प्रथममूष्माणां प्रथमं वैरोचनादि स्वाहान्तम्। पुरक्षोभनमन्त्रो लक्षजापः ॥ ३४ ॥

'ऊँ कं कं टं टं तं पं यं स्वाहा' यह नगर को ही क्षुभित करने का मन्त्र है इसे १ लाख बार जाप करें।

अन्तस्थानां द्वितीयं तु क्ष-कारद्वयम्। मध्ये पुनरन्तस्थानां द्वितीयकम् ।
हूं-कारत्रयं वैरोचनादि फट्-कार-विदर्भितं स्वाहान्तम्।
भूमि-शोधनमन्त्रः ॥ ३५ ॥

'ऊँ रं क्षं क्षं स्वाहा' और 'ऊँ हूँ हूँ हूँ फट् स्वाहा' यह भूमिशोधन मन्त्र है।

वैरोचनादि तदनु वज्रा हूं-कारान्तम्। खानपानाधिष्ठानमन्त्रः ॥ ३६ ॥

'ॐ आः हूँ' यह भोजनपान का अधिष्ठान मन्त्र है।

वैरोचनादि तदनु अ-कारो मुखम् ऊष्माणां तृतीयकम्। अन्तस्थानां चतुर्थकं उपरि वह्निभूषितम्। धर्माणां तदनु वज्रा चाद्यनुत्पन्नत्वात्, ओं आः हूं फट् स्वाहा। सर्वभौतिकबलिमन्त्रः ॥

'ॐ अं सं वं आः' और 'ॐ आः हूँ फट् स्वाहा' यह सभी भौतिक तत्त्वों को बलि देने का मन्त्र है।

द्वितीयकल्पराज में मन्त्रोद्धार नवम पटल पूर्ण हुआ।

जापपटलो नाम दशमः

अथातो वज्रसत्त्वाख्यः सर्वधर्मैकसंवरः ।
नैरात्म्यां चुम्बयित्वा तु जापविषयं प्रकाशते ॥ १ ॥

इसके बाद भगवान् वज्र सत्त्व, जो सभी धर्मो का एकमात्र संवर है वे नैरात्म्यादेवी का चुम्बन करने के बाद जाप के विषय को प्रकाशित करते हैं, यहाँ जाप का अर्थ माला है।

स्फटिकेन स्तम्भनं जाप्यं वश्ये च रक्तचन्दनम् ।
रिष्टिकयाभिचारुकं विद्वेषं निरंशुकैस्तथा ॥ २ ॥
उच्चाटनमश्वहड्डेनाकर्षणं ब्रह्मास्थिना ।
वर्षापणं गजास्थिकैर्मारणं महिषस्य च ॥ ३ ॥
स्तम्भने क्षीरपानं तु वश्ये स्वच्छन्दमाचरेत् ।
मारणे सिह्लकं चैव आकृष्टौ च चतुःसमम् ॥ ४ ॥
विद्वेषे शालिजं प्रोक्तमुच्चाटने कस्तूरिका ।
अथवा अन्तश्वमादिश्वं नादिं गादिं हादिं तथैव च ॥ ५ ॥

स्फटिक के माला में जप करने से स्तम्भन होता है और जिसे स्तम्भन करना हो उसे स्फटिक में जपना चाहिए। वशीकरण के लिए रक्तचन्दन की माला होनी चाहिए। रिष्टिका की माला से सौन्दर्य वृद्धि होती है। कपड़ों में न रखकर बाहर ही जपने से विद्वेष की सृष्टि होती है। घोड़े के नाल की माला से उच्चाटन होता है और आकर्षण के लिए ब्राह्मण की हड्डियों की माला होनी चाहिए। हाथी के हड्डियों की माला से वर्षा होती है। भैंसे के हड्डियों की माला से मारण सिद्ध होता है। स्तम्भन के लिए दुग्ध पान करना चाहिए। वशीकरण के लिए कोई विधि नहीं है। मारण में गुग्गल का प्रयोग और आकृष्ट करने के लिए सभी उपाय किये जा सकते हैं। विद्वेष में शालिधान के चावल, उच्चाटन में कस्तूरिका होनी चाहिए। अथवा अन्तिम श्व आदि श्व नादिमन्त्र हादिमन्त्र और गादि मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए।

द्वितीयकल्पराज में दशवाँ पटल पूर्ण हुआ।

सहजार्थपटलो नामैकादशः

गाढेनालिङ्ग्य हेवज्रं संपीड्याधरं दन्तकैः ।
नैरात्म्या पृच्छते तत्र देहिनां कुलरूपकम् ॥ १ ॥
भगे लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य इत्याह चक्रनायकः ।
देहिनां स्वकुलं वक्ष्ये प्रज्ञापारमिते श्रृणु ॥ २ ॥
अनामिकामूले यस्य स्त्रियो वा पुरुषस्य वा ।
नवशूकं भवेद् वज्रमक्षोभ्यकुलमुत्तमम् ॥ ३ ॥
वैरोचनस्य भवेच्चक्रं अमिताभस्य पङ्कजम् ।
रत्नसंभवो महारत्नं खड्गं कर्मकुलस्य च ॥ ४ ॥
यो हि योगी भवेत् कृष्णो अक्षोभ्यस्तस्य देवता ।
यो हि योगी महागौरी वैरोचनः कुलदेवता ॥ ५ ॥
यो हि योगी महाश्यामो अमोघस्तस्य देवता ।
यो हि योगी महापिङ्गो रत्नेशः कुलदेवता ॥ ६ ॥

भगवान् हेवज्र को गाढआलिङ्गन करके, दाँतों से अधर को संपीडन करके प्राणियों के कुल रूपकों के विषय में भगवती नैरात्म्या पूछती है – चक्रनायक ने कहा कि भग में लिङ्ग रखकर प्राणियों के अपने कुल बताऊँगा वह पारमिता में सुनें। अनामिका मूल में अवस्थित पुरुष और स्त्री का नयाँ स्वरूप निर्मित होगा वह कुल वज्र है उसके देवता अक्षोभ्य हैं, उनका चिह्न नया रेशमवस्त्र है। वैरोचन कुल का चिह्न चक्र है। अमिताभ का पङ्कज है। रत्न से भव महारत्न धारण करते हैं। कर्म कुल का खड्ग है। जो योगी कृष्ण वर्ण का होगा उसके देवता अक्षोभ्य हैं। जो महागौरवर्ण का होगा उसके देवता वैरोचन ही हैं। जो महाश्याम वर्ण का योगी है उसके देवता अमोघसिद्धि हैं। जो योगी पिङ्गल वर्ण का है उसके देवता रत्नसंभव हैं।

रक्तगौरो हि यो योगी अमिताभः कुलदेवता ।
श्वेतगौरो हि यो योगी तस्य वज्रसत्त्वकुलं भवेत् ॥ ७ ॥
जन्तवो नाभिमन्तव्या न विहेठ्या योगपारगैः ।
तथागतानां कुलास्ते स्यूरूपमाश्रित्य सांवृतम् ॥ ८ ॥

रक्त और गौर वर्ण के योगी के देवता अमिताभ हैं। श्वेत गौर वर्ण के योगी का कुल वज्रसत्त्व ही है। प्राणियों का अपमान नहीं करना चाहिए और उनको तिरस्कृत भी नहीं करना चाहिए – योगियों को। क्योंकि वे सब तथागत कुल के हैं। संवृत रूप का आश्रय लेकर वे रहते हैं।

स्त्रीणां लक्षणं चैव यथा पुंसि तथैव च ।
तासामपि कुलास्ते स्युः संवुत्याचाररूपतः ॥ ९ ॥
तत्र तुष्टो महावज्री भगलिङ्गस्य चुम्बनात् ।
नैरात्म्यां बोधयामास शृणु देवि प्रपूजनम् ॥ १० ॥
उद्याने विजनेदेशे आत्मागारान्तरेषु च ।
नग्नीकृत्य महामुद्रां पूजयेद् योगवित् सदा ॥ ११ ॥
चुम्बनालिङ्गनं कृत्वा भगस्पर्शं तथैव च ।
वृषणं नरनासायाः पानमधरमधुस्य च ॥ १२ ॥
मदनाङ्कुरैः कर्म बोलवान् कुरुते सदा ।
दौलाङ्कूर्परेणापि सुप्रसारितकैस्तथा ॥ १३ ॥
मुहुर्मुहुः कामयेद् वज्री अध ऊर्ध्वं निरीक्षयेत् ।
प्राप्नोति विपुलां सिद्धिं सर्वबुद्धसमो भवेत् ॥ १४ ॥
कर्पूरं पीयते तत्र मदनं चैव विशेषतः ।
बलस्य भक्षणं तत्र कुर्यात् कर्पूरहेतुना ॥ १५ ॥

स्त्रियों का लक्षण भी ऐसा ही है जैसा पुरुषों का। उन स्त्रियों के भी कुल हैं, जो संवृतिरूप आचार से आप्लावित हैं। उस अवसर पर संतुष्ट महावज्रधर ने भग और लिङ्ग का चुम्बन पूर्वक नैरात्म्या को बोधित किया आमन्त्रित किया और कहा हे देवि ! तुम सुनो पूजन का रहस्य। उद्यान में, विजन देश में, अपने ही घर के अन्दर महामुद्रा को नग्न करके योग को जानने वाला साधक पूजा करें। चुम्बन, आलिङ्गन और भग का स्पर्श करके नर नासिका को चूसते हुए

अधर मधु का पान करना चाहिए। साथ ही मदन-काम को बढ़ावा देने वाला सुरत में संलग्न होकर कर्पूर आदि उत्तम सुगन्ध के संस्पर्शपूर्वक कामाङ्गों का संचालन कर बहुत रमणीय ढंग से उनका संस्पर्श करें। इस प्रकार बारम्बार कामना करें, सुरत में संलग्न होवें, नीचे और ऊपर निरीक्षण करें उससे विपुल सिद्धि होती है। वह सभी बुद्धों के समान हो जाता है। उस अवसर पर कर्पूर, मदन आदि का पान किया जाता है। कल का भक्षण करें, कर्पूर प्राप्ति के इच्छा से नित्य मदन अर्थात् ज्ञानोदय-काम उदय में सुरत आदि कर्म में संलग्न होना चाहिए।

द्वितीयकल्पराज में एकादश पटल पूर्ण हुआ।

महातन्त्रराजमायाकल्पो द्वितीयः

अथातो वज्री चतुरोऽभिषेकान् कथयामास ।
महावज्रं महाघण्टां गृह्ण वज्रप्रतिष्ठितः ।
वज्राचार्यस्य अद्यैव कुरु शिष्यस्य संग्रहम् ॥ १ ॥
यथा बुद्धैरतीतैस्तु सिच्यन्ते बोधिपुत्रकाः ।
मया गुह्याभिषेकेण सिक्तोऽसि चित्तधारया ॥ २ ॥
रतिदां सिद्धिदां देवीं विश्वरूपां मनोरमाम् ।
गृह्ण गृह्ण महासत्त्व गृहीत्वा पूजनं कुरु ॥ ३ ॥
इदं ज्ञानं महासूक्ष्मं वज्रमण्डं नभोपमम् ।
विरजं मोक्षदं शान्तं पिता ते त्वमसि स्वयम् ॥ ४ ॥
वज्रपद्माधिष्ठानमन्त्रः ।
ओं पद्म सुखाधार महाराग सुखंदद ।
चतुरानन्दस्वभाग विश्व हूं हूं हूं कार्यं कुरुष्व मे ॥ ५ ॥
ओं वज्र महाद्वेष चतुरानन्ददायक ।
खग मुखैकरसो नाथ हूं हूं हूं कार्यं कुरुष्व मे ।
शिरसि ओं-कारं हृदि हूँ-कारं किञ्जल्के आ-कारम् ॥ ६ ॥

इसके बाद वज्र में प्रतिष्ठित वज्रधर ने चार प्रकार के अभिषेकों के विषय में कहा – महावज्र और महाघण्टा को धारण करो। वज्राचार्य और उनके शिष्यों का संग्रह आज ही करो। जैसे अतीत कालीन बुद्धों के द्वारा बोधिपुत्र - शिष्य आदि अभिषिक्त किये जाते हैं उसी तरह मैं अपने गुह्य अभिषेक चित्त धारा के द्वारा तुम्हारा अभिषेक करता हूँ। रति देने वाली, सिद्धि देने वाली, विश्वरूपिणी, मनोरमा का ग्रहण करो, ग्रहण करो हे महासत्त्व उसे पूजन करो। ग्रहण करो। यह ज्ञान महासूक्ष्म है, वज्रमण्डल में श्रेष्ठ है, आकाश सदृश है। यह विरज, मोक्षदाता, शान्त है। तुम स्वयं भी पिता हो जाते हो। वज्र के

अधिष्ठान का मन्त्र है – ऊँ पद्म ! सुख के आधार ! महाराग ! सुख दे दो। चार आनन्दों के स्वभाववाले ! सारे विश्व को हूँ हूँ हूँ कार्य करो मेरे लिए। ऊँ हे वज्र ! हे महाद्वेष ! चार आनन्दों को देने वाले ! आप वज्र हैं ! हे नाथ हूँ हूँ हूँ मेरे कार्य को करो। शिर में ओङ्कार, हृदय में हूँकार, मणिपूर में आकार रहता हैं ऊँ ऊँ ऊँ हूँ हूँ हूँ स्वाहा।

तन्त्रराज मायाकल्प द्वितीय – द्वादश पटल पूर्ण हुआ।

ग्रन्थ पूर्ण हुआ।

ऊँ तत् सत् ॥

सन्दर्भग्रन्थ सूची

१– अश्वघोष, **बुद्धचरितम्**, वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, २००४ ।

२– अश्वघोष, **सौन्दरनन्द**, वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, २००४ ।

३– असंग एवं मैत्रेयनाथ, **महायानसूत्रालङ्कारः**, वाराणसी : बौद्ध भारती, १९८५ ।

४– आप्टे, वामन शिवराम, **संस्कृत-हिन्दी कोश**, नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, १९६६ ।

५– उपाध्याय, बलदेव, **बौद्धदर्शन मीमांसा**, वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, पञ्चम संस्करण, १९९९ ।

६– उपाध्याय, भरतसिंह, **बौद्धदर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन**, नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, १९८१ ।

७– कमलशील, **प्रज्ञापारमिता वज्रच्छेदिका टीका**, वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा-संस्थान, १९९० ।

८– गपि, यशोविजय, **जैन तर्क भाषा**, अहमदाबाद : सरस्वती पुस्तक भण्डार, १९३८ ।

९– गुप्त, मोक्षाकर, **बौद्ध तर्क भाषा**, वाराणसी : प्राच्य विद्या संस्थान, १९८५ ।

१०–चन्द्रकीर्ति, **प्रसन्नपदा**, वाराणसी : बौद्ध भारती, १९८३ ।

११– चन्द्रधर शर्मा (सं०), **सौगत सिद्धन्तसारसंग्रह**, वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, १९५४ ।

१२– त्रिपाठी, रामशंकर, **सौत्रान्तिक दर्शनम्**, वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा-संस्थान, १९९० ।

१३– त्रिपाठी, रामशंकर, **बौद्धदर्शन प्रस्थान**, वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा-संस्थान, १९९७ ।

१४– दिङ्नाग, **प्रज्ञापारमिता पिण्डार्थः**, दरभंगा : मिथिला विद्यापीठ, १९६० ।

१५– दिव्यवज्र वज्राचार्य (अनु०), **सद्धर्मलंकावतारसूत्रम्**, ललितपुर : लोटस रिसर्च सेन्टर, १९९३ ।

१६– द्वारिकादास शास्त्री (सं०), **अपोहवादः**, वाराणसी : बौद्ध भारती, १९९२ ।

१७– धर्मकीर्ति, **प्रमाणवार्त्तिक**, वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, १९९४ ।

१८– धर्मकीर्ति, **न्याय बिन्दु**, वाराणसी : बौद्ध भारती, १९८४ ।

१९- नागार्जुन, **मध्यमकशास्त्रम्**, वाराणसी : बौद्ध भारती, १९८३ ।

२०- नागार्जुन, **विग्रहव्यावर्तनी**, वाराणसी : बौद्ध भारती, १९८४ ।

२१- न्यौपाने, काशीनाथ, **बौद्धागमरहस्यम्** (अप्रकाशित)

२२- न्यौपाने, काशीनाथ, **मीमांसा पदार्थ विज्ञानम्** , वाराणसी : दिलीपकुमार पब्लिशर्स, १९९४ ।

२३- न्यौपाने, काशीनाथ, **लाहिडी क्रियायोग संहिता**, वाराणसी : सत्यलोक, २००५ ।

२४- नरेन्द्रदेव, **बौद्ध धर्मदर्शन**, पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, १९७१ ।

२५- परशुराम वैद्य (सं०), **अष्टसाहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता**, दरभंगा : मिथिला विद्यापीठ, १९६० ।

२६- पेमा तेन्जिङ्ग (सं०), **प्रज्ञापारमिता वज्रच्छेदिकासूत्रम्**, वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा-संस्थान, १९९४ ।

२७- परशुराम वैद्य (सं०), **प्रज्ञापारमिता हृदयसूत्रम्**, दरभंगा : मिथिला विद्यापीठ, १९६० ।

२८- पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, **बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास**, लखनऊ : हिन्दी समिति, १९७६ ।

२९- प्रधान, भुवनलाल, **नेपालमा बौद्धधर्म**, काठमांडु : नेपाल राजकीय प्रज्ञा प्रतिष्ठान, १९९८ ।

३०- बुद्धघोष, **विशुद्धिमग्गो**, महाराष्ट्र : विपश्यना विशोधन विन्यास, १९९८ ।

३१- मल्लिषेण, **स्याद्वादमञ्जरी**, गुजरात : श्रीपरमश्रुतप्रभावकमण्डल, १९९२ ।

३२- **महावग्गो**, महाराष्ट्र : विपश्यना विशोधन विन्यास, १९९८ ।

३३- मिश्र, विरेन्द्रप्रसाद, **दर्शनशास्त्र : एक परिचय**, काठमांडु : श्रीमती श्यामा मिश्र, १९८३ ।

३४- मिश्र, ज्ञानश्री, **निबन्धावली**, पटना : काशी प्रसाद जायसवाल शोध संस्थान, १९८७ ।

३५- मैत्रेयनाथ, **अभिसमयालङ्कारकारिका**, दरभंगा : मिथिला विद्यापीठ, १९६० ।

३६- राधेश्यामधर द्विवेदी (सं०), **बौद्ध विज्ञानवाद : चिन्तन एवं योगदान**, वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा-संस्थान, १९८३ ।

३७- वसुबन्धु, **अभिधर्मकोश**, इलाहाबाद : हिन्दुस्तानी एकेडेमी, १९८४ ।

३८- वसुबन्धु, **विज्ञप्तिमात्रतासिद्धिः**, वाराणसी : सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, १९९२ ।

३९- शर्मा, चन्द्रधर, **बौद्धदर्शन और वेदान्त**, इलाहाबाद : विजन विभूति प्रकाशन, १९८६ ।

४०- शान्तिदेव, **बोधिचर्यावतारः**, वाराणसी : बौद्ध भारती, १९८८ ।
४१- सिंह, अमर, **अमरकोशः**, काठमांडु, रत्न पुस्तक भण्डार, २००८ ।
४२- स्थिरमति, **विज्ञप्तिमात्रतासिद्धिः स्थिरमतिभाष्य**, वाराणसी : सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, १९९२ ।
४३- हरिभद्र, **अष्टसाहस्रिका आलोकटीका**, दरभंगा : मिथिला विद्यापीठ, १९६० ।
४४- हरिभद्र, **षड्दर्शन समुच्चय**, वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, १९७९ ।

45. Akira Hirakawa, *A History of Indian Buddhism*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1993.
46. Bapat, P.V., *2500 Years of Buddhism*, Delhi: Ministry of Information and Broadcasting, 1956.
47. Bapat, and Chatterjee, *An Introduction to Indian Phi losophy*, Calcutta: University of Calcutta, 1984.
48. Dasgupta, S.N., *A History of Indian Philosophy*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1973.
49. Gellner, David N, *Monk, Householder and Tantric Priest*, Delhi: Cambridge University Press, 1992.
50. Kewal Krishan Mittal (Editor), *Vijnanavada (Yogachar) and its Tradition*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1993.
51. Murti, T.R.V., *Central Philosophy of Buddhism*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1954.
52. Pandey, G.C., *Studies in Mahayana*, Varanasi: Central Institute of Higher Tibetan Studies, 1993.
53. Takakusu, Junjiro, *The Essentials of Buddhist Philosophy*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1949.
54. Wayman, Alex, *Buddhist Insight*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1984.

Other books of related interest published by us:

1. ***A Concise Dictionary of Indian Philosophy*** by *John Grimes*
2. ***The Aphorisms of Siva*** trans. with exposition and notes by *Mark S.G. Dyczkowski*
3. ***A Journey in the World of the Tantras*** by *Mark S.G. Dyczkowski*
4. स्पन्दप्रदीपिका ***Spandapradīpikā*** (Sanskrit) — A Commentary on the Spandakārikā by Bhagavadutpalācārya Edited by *Mark S.G. Dyczkowski*
5. ***Vijnana Bhairava : The Practice of Centring Awareness*** trans. and commentary by *Swami Lakshman Joo*
6. ***Abhinavagupta's Commentary on the Bhagavad Gita : Gītārtha Saṁgraha*** trans., introd. & notes by *Boris Marjanovic*
7. ***Stavacintāmaṇi*** of Bhaṭṭa Nārāyaṇa with the Commentary by Kṣemarāja स्तवचिन्तामणि: Translated from Sanskrit with Introduction and Notes by *Boris Marjanovic*
8. ***Aspects of Tantra Yoga*** by *Debabrata SenSharma*
9. ***An Introduction to the Advaita Saiva Philosophy of Kashmir*** by *Debabrata SenSharma*
10. आगम-संविद् ***Āgama-Saṁvid*** (Sanskrit) डॉ० कमलेश झा
11. ***The Khecarīvidyā of Ādinātha*** : A critical edition and annotated translation of an early text of ***haṭhayoga*** by *James Mallinson*

12. ***Shaivism in the Light of Epics, Puranas and Agamas*** by N.R. Bhatt
13. ***The Hindu Pantheon in Nepalese Line Drawings*** : Two Manuscripts of the Pratiṣṭhālakṣaṇasārasamuccaya compiled by *Gudrun Buhnemann*
14. ***Selected Writings of M.M. Gopinath Kaviraj***
15. **शिव-संबोध और गंगा प्रतीक** - डॉ॰ रमाकान्त पाण्डेय
16. ***Śrī Tantrālokaḥ*** (Sanskrit Text with English Translation) (3 vols.) by *Gautam Chatterjee*
17. ***Fundamentals of the Philosophy of Tantras*** by *Manoranjan Basu*
18. ***Yantra Images*** Compiled and edited by *Dilip Kumar*
19. ***White Shadow of Consciousness***: Recognition of the actor by *Gautam Chatterjee*
20. ***The Stanzas on Vibration*** by *Mark S.G. Dyczkowski*

डॉ० काशीनाथ न्यौपाने संस्कृत वाङ्मय के विशिष्ट साधक हैं। इन्होने वाराणसी में रहकर प्रसिद्ध विद्वान् स्वामी योगीन्द्रानन्द जी के सान्निध्य में वेदान्त, न्याय, मीमांसा, बौद्धदर्शन, बौद्धतन्त्र, शैवदर्शन, शाक्ततन्त्र, पालि, प्राकृत एवं जैन दर्शन का गहन अध्ययन किया है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से पूर्वमीमांसा एवं बौद्धदर्शन में स्वर्णपदक सहित आचार्य करने के बाद विद्यावारिधि उपाधि प्राप्त किया है।

संस्कृत लेखन में सिद्धहस्त डॉ० न्यौपाने द्वारा लिखित मीमांसा पदार्थ विज्ञानम्, मीमांसातर्कभाषा, मीमांसानयभूषनम्, बौद्धदर्शनभूमिः, बौद्धप्रमाणशास्त्रम्, वज्रयानमहाशास्त्रम्, सौत्रान्तिकदर्शनम्, वज्रयोगसाधना, बौद्धागमरहस्यम्, दर्शनसंदोहः, तारिणीवरिवस्या, लाहिडी क्रियायोग संहिता आदि मौलिक कृतियाँ संग्रहणीय ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध हैं जो विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में भी निर्धारित हैं।

नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय के पूर्व रिसर्च डाइरेक्टर डॉ० न्यौपाने सम्प्रति नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय, काठमाण्डु में बौद्धदर्शन विभाग में कार्यरत हैं।

ISBN 818611711-3
9788186117118
₹ 225.00